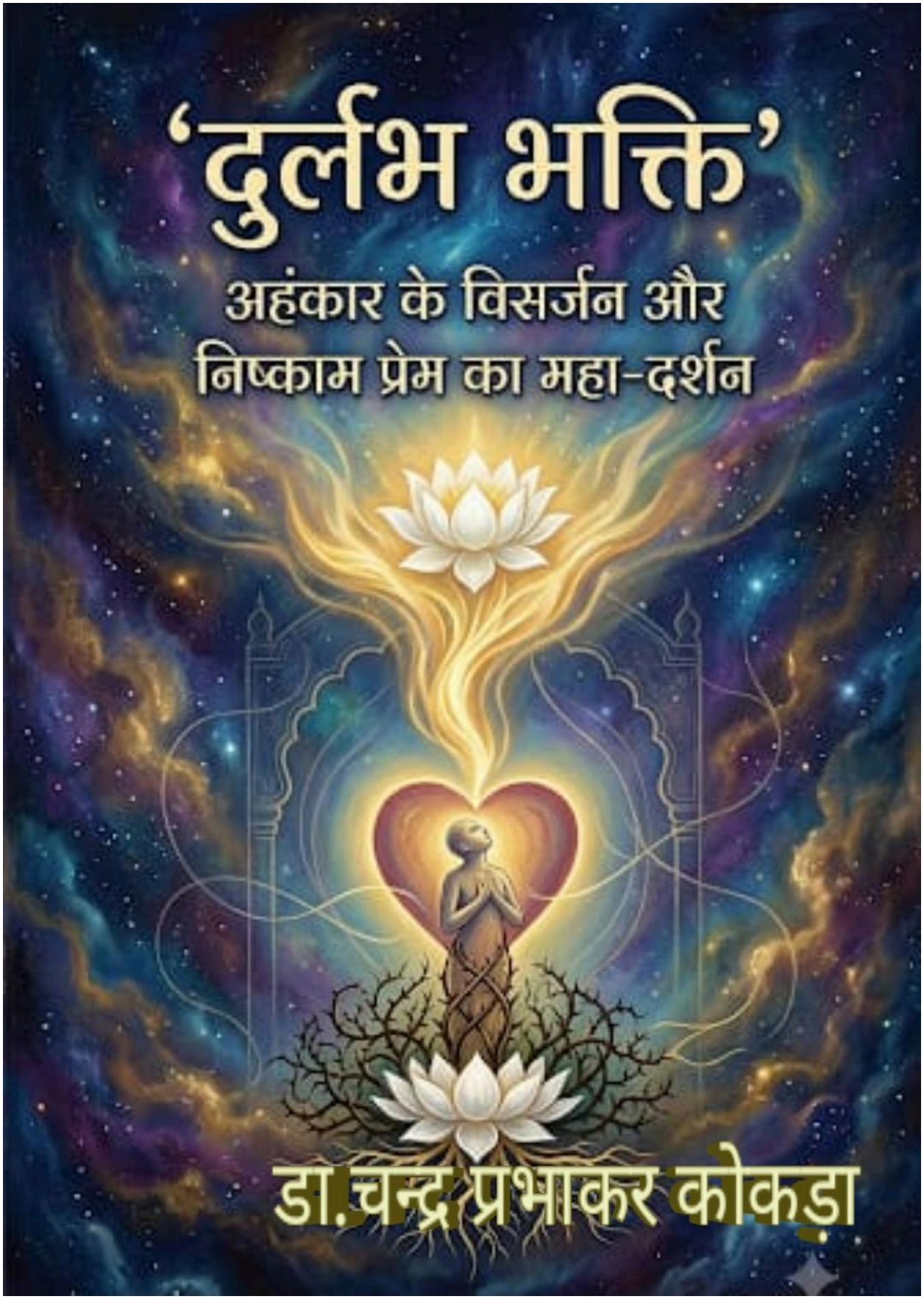
‘दुर्लभ भक्ति’
अहंकार के विसर्जन और
निष्काम प्रेम का महा-दर्शन
डा.चन्द्र प्रभाकर कोकड़ा

दुर्लभ भक्ति

अहंकार के विसर्जन और

निष्काम प्रेम का महा-दर्शन

डा.चन्द्र प्रभाकर कोकड़ा

अनुक्रमणिका

क्र.अ.	विषय - दर्पण	पृ.सं.
	प्राक्कथन	4
1	दुर्लभ भक्ति का अगाध समुद्र	8
2	महान सन्तो की अगाध 'चेतना।	9
3	विश्व चेतना के शिखर।	10
4	सार्वभौमिक चेतना	12
5	पदों का रसास्वादन	13
6	भक्ति यदि इसी जन्म का।	15
7	शून्य का संगीत	17

8
मूलस्रोतों का अंतरंग दर्शन 18

9
संशय,बोध,'जिज्ञासा'। 20

10
सन्तों की कहा जमात। 22

11
सूली और सेज। 26

12
पावन ग्रंथों का 'सार। 30

13
दुर्लभ भक्ति की सूक्तियों। 33

14
योग,सूफी और प्राप्त दर्शन'। 34

15
विश्व की अन्य परंपरायें 36

16
आंतरिक डायरी 38

17
अहंकार के छह्म 39

18
देह भाव से परे" 41

19
तपस्या का वास्तविक फल। 44

20
शारीरिक कष्ट और 'भ्रम'। 47

21
सिद्धियाँ और चमत्कार 48

22
सूक्ष्म अवलोकन और मनोविज्ञान 50

दुर्लभ भक्ति

अंहकार के विसर्जन और
निष्काम प्रेम का महा दर्शन

डा.चन्द्र प्रभाकर कोकड़ा

प्राक्कथन

दुर्लभ भक्ति

मंगलाचरण: चेतना का प्रथम स्पंदन

शब्दों की सीमा से परे, उस अनंत और अद्वैत शून्यता को प्रणाम, जहाँ न कोई प्रष्टा है, न कोई दृश्य—केवल अनुभव का असीम विस्तार शेष रहता है। जब चेतना अपने ही मूल स्रोत की ओर मुड़ती है, तो दर्शन किसी अकादमिक शास्त्र की परिधि में नहीं बंधता, बल्कि वह अस्तित्व का जीवंत संगीत बन जाता है। इस ग्रंथ का अवतरण उसी संगीत की गूँज है, जो बाहर के कोलाहल से कटकर भीतर के एकांत में उतरने की एक अकुलता है।

हम जीवन भर जिस सत्य की खोज बाहर, आकाश के भूगोल और मंदिरों की दीवारों के बीच करते हैं, वह सत्य हमारी अपनी धड़कनों के ठीक पीछे धड़क रहा होता है। यह ग्रंथ उस खोज का इतिहास नहीं, बल्कि उस प्राप्ति का जीवित दस्तावेज है, जहाँ साधक और साध्य का द्वैत सदा के लिए मिट जाता है।

भक्ति शब्द सुनते ही सामान्यतः लोक-व्यवहार में जो चित्र उभरता है, वह किसी मंदिर की घंटी, धूप-बत्ती या एकतरफा प्रार्थना तक सीमित हो जाता है। किंतु दर्शन की जब पराकाष्ठा होती है, और जब चेतना अपने मूल उद्गम से संवाद करती है, तब 'भक्ति' कोई भावुकता या कर्मकांड नहीं रह जाती—वह अस्तित्व का सबसे कठिन, सबसे सुंदर और सबसे दुर्लभ आयाम बन जाती है। इसे 'दुर्लभ' क्यों कहा गया है? क्योंकि यह अहंकार के विसर्जन की वह अंतिम अग्नि है, जिसमें तपने के बाद कुछ भी अपूर्ण नहीं बचता।

इसकी गहराई में उतरें, तो भक्ति और ज्ञान का द्वंद्व स्वतः समाप्त हो जाता है। ज्ञान जहाँ चेतना का उत्तुंग शिखर है, वहीं भक्ति उसी शिखर से बहने वाली करुणा और प्रेम की अमृत धारा है। ज्ञान कहता है—"अहं ब्रह्मास्मि" (मैं ब्रह्म हूँ), और भक्ति कहती है—"त्वमेव सर्वं मम देव देव" (हे प्रभु, सब कुछ आप ही हैं)। जहाँ ज्ञान का बोध पहुंचकर थोड़ा सा रुक जाता है, वहाँ भक्ति का अगाध समुद्र हिलोरें लेने लगता है। ज्ञानी अपने को सत्य से जोड़ता है, किंतु भक्त सत्य को ही अपना सर्वस्व मानकर उसमें पूरी तरह मिट जाता है। यही कारण है कि वेद और पुराणों में ज्ञान तो सहज उपलब्ध मान लिया गया है, किंतु इस प्रकार की अनन्य, अहैतुकी और निष्काम भक्ति को अत्यंत दुर्लभ कहा गया है।

'दुर्लभ भक्ति' का अर्थ है—मांग से मुक्ति। जब तक साधक भगवान से कुछ माँग रहा है—सुख, शांति, मुक्ति या रिद्धियाँ—तब तक वह व्यापारी है, भक्त नहीं। व्यापार में लेन-देन है, प्रेम में केवल समर्पण है। जब भक्त अपनी अस्मिता, अपने सुख-दुःख, यहाँ तक कि अपनी मुक्ति के मोह को भी आराध्य के चरणों में अर्पित कर देता है, तब भक्ति का वह शुद्ध रूप प्रकट होता है, जो संसार के आकर्षणों और प्रलोभनों से परे है। यह उस विरह की आग में पकती है, जो प्रियतम की एक झलक के लिए संपूर्ण जगत को तृण के समान त्याग देने का सामर्थ्य है। समाधि में मन का जो मौन घटित होता है, भक्ति में वही मौन प्रेम का रूप ले लेता है। भक्त का मन चंचल चंद्रमा की तरह भटकना बंद कर देता है, क्योंकि उसने अपने संपूर्ण ज्वार-भाटा को अपने प्रेम के सूर्य में समेट लिया है। अब उसके भीतर कोई अंधेरा नहीं बचता, कोई राहु-केतु उसे आच्छादित नहीं कर सकता, क्योंकि उसके अस्तित्व का हर एक अणु उस परम प्रकाश से ओत-प्रोत हो चुका होता है।

इस ग्रंथ के पन्नों को जैसे-जैसे हम अपने भीतर पलटते जाते हैं, यह स्पष्ट होता जाता है कि दुर्लभ भक्ति किसी मंदिर की मूर्ति तक पहुँचने का मार्ग नहीं है, बल्कि उस चैतन्य को अपनी ही धड़कनों में जी लेने का नाम है, जहाँ साधक और साध्य का भेद सदा के लिए मिट जाता है।

भक्ति कोई विचार, मत या संप्रदाय नहीं है; यह तो जीवन का वह परम और शुद्धतम स्पंदन है जहाँ मनुष्य का 'मैं' (अहंकार) पूरी तरह गलकर उस अनंत चैतन्य में विलीन हो जाता है। संसार में पूजा-पाठ, नियम-कायदे और धार्मिक अनुष्ठानों की कोई कमी नहीं है, किंतु निष्काम प्रेम और पूर्ण आत्म-समर्पण की स्थिति अत्यंत दुर्लभ है। इसी चेतना को उजागर करने के लिए इस ग्रंथ 'दुर्लभ भक्ति' का अवतरण हुआ है।

इस ग्रंथ की यात्रा किसी एक भौगोलिक सीमा, धर्म या ग्रंथ तक सीमित नहीं है। यह वेदों और उपनिषदों की अद्वैत धारा से लेकर श्रीमद्भगवद्गीता के अनन्य भक्तियोग, सूफियों के इश्क-ए-हकीकी और बाइबल के "ईश्वर प्रेम है" के वैश्विक प्रकाश को एक ही सूत्र में पिरोती है। यहाँ मीरा की सूली की सेज, कबीर का आंतरिक विवाह, सूरदास की वियोग-वर्षा, चैतन्य का महा-भाव, रूमी का मौन और रबिया की निष्काम पुकार—सब मिलकर उस एक ही सत्य की ओर संकेत करते हैं जहाँ प्रेमी और प्रियतम का द्वैत मिट जाता है।

'दुर्लभ भक्ति' केवल एक पठनीय पुस्तक नहीं है, बल्कि यह पाठक के भीतर छिपी उस गहरी आकुलता और प्यास को जगाने का एक माध्यम है। यह ग्रंथ उन सभी खोजी आत्माओं को सादर समर्पित है जो तर्कों और कर्मकांडों के कोलाहल से परे जाकर अपने भीतर उस परम मौन, अहैतुकी प्रेम और अखंड प्रकाश का अनुभव करना चाहते हैं।



डा. चन्द्र प्रभाकर कोकड़ा

25 जुलाई1942 को जन्मे भिवानी (हरियाणा)के लेखक, शोध कर्ता अंतर्राष्ट्रीय संस्था **World Book of Records (London)**द्वारा सम्मानित इनका साहित्य फ्री Bhajansamratchandra.Comपर उपलब्ध है ज्ञान की ज्योति के लिये जिन्हे विश्व भर के जिज्ञासुओं द्वारा गूगल के माध्यम से सराहा जाता है.मातृभाषा हिंदी के संरक्षण और उत्थान हेतु सन 1957 के ऐतिहासिक आंदोलन में सक्रिय भागीदारीऔर कारागार में रहते हुए भी हिंदी साहित्य के सर्जन की उनकी लेखनी कभी नहीं रुकी .विश्वास है कि समतामूलक संदेश को प्रसारित करती यह पुस्तक पाठकों को जीवन में वैचारिक स्पष्टता औरआत्मदीप्ति का प्रकाश अवश्य फैलाएगी।.

डा. चन्द्र प्रभाकर कोकड़ा

बिचला बाजार, भिवानी -127021(हरियाणा)

मोवाइल -9992075303

सम्पूर्ण डिजिटल लायब्रेरी के लिए Bhajansamratchandra. Com

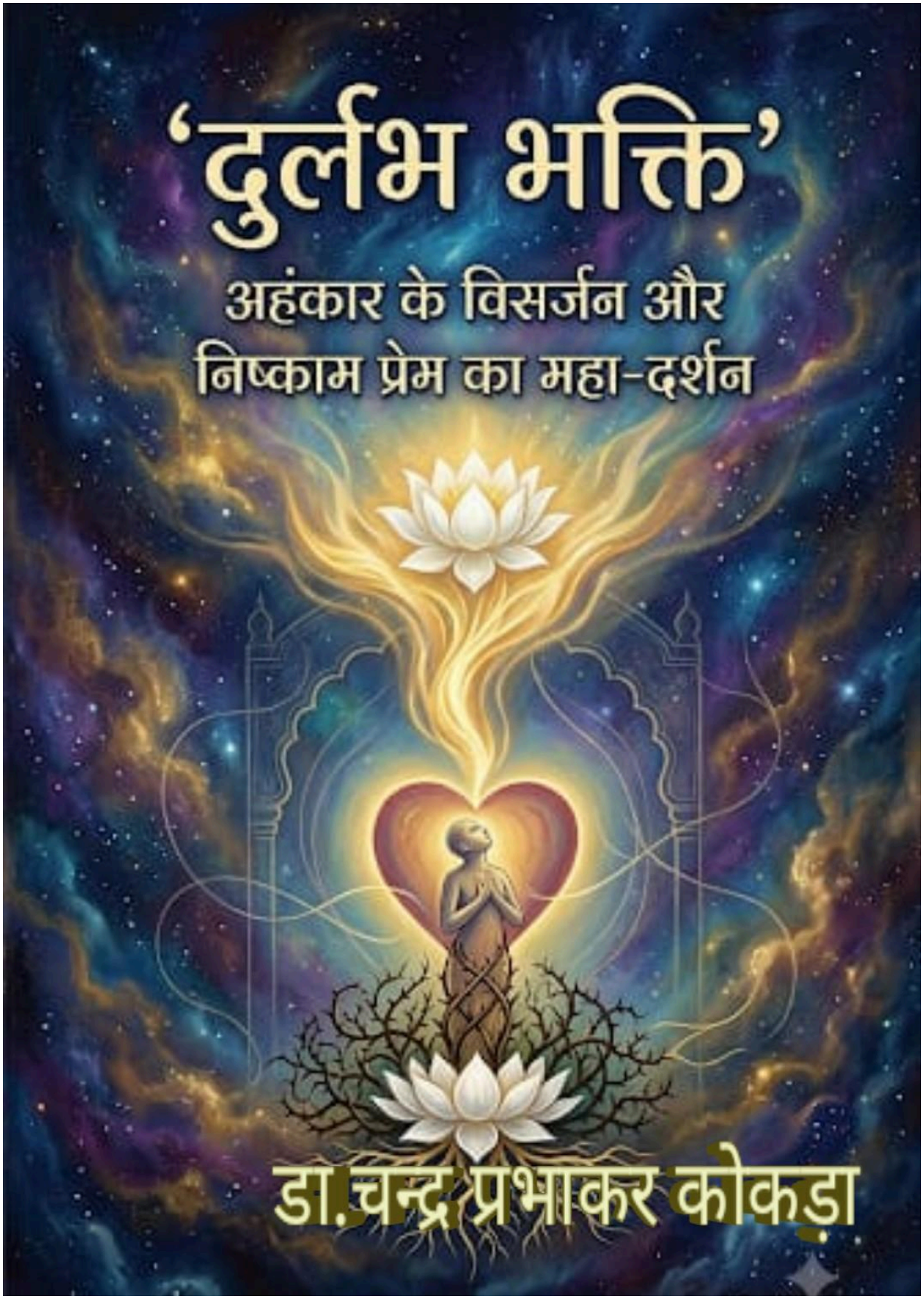
‘दुर्लभ भक्ति’
अहंकार के विसर्जन और
निष्काम प्रेम का महा-दर्शन
डा.चन्द्र प्रभाकर कोकड़ा

अध्याय 1

दुर्लभ भक्ति का अगाध समुद्र

भक्ति और ज्ञान का अद्वैत संगम

ज्ञान और भक्ति को अक्सर अलग-अलग मार्ग माना जाता है, किंतु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर दोनों एक ही परम तत्त्व के दो पहलू हैं। जहाँ ज्ञान चेतना का उत्तुंग और निर्जन शिखर है, वहीं भक्ति उसी शिखर से फूटने वाली करुणा और प्रेम की अमन्द धारा है।

ज्ञाता जब अपने ज्ञान की पराकाष्ठा पर पहुँचता है, तो वह उद्घोष करता है—"अहं ब्रह्मास्मि" (मैं ही ब्रह्म हूँ)। किंतु वही बोध जब हृदय के धरातल पर उतरता है, तो गूँज उठता है—"त्वमेव सर्वं मम देव देव" (हे प्रभु, आप ही मेरे सर्वस्व हैं)। ज्ञान साधक को सत्य का परिचय कराता है, और भक्ति उस सत्य में साधक को समूल विलीन कर देती है। इसलिए ज्ञानी और भक्त में कोई भेद नहीं रह जाता; दोनों का अंत एक ही अद्वैत अनुभव में होता है।

'दुर्लभ' होने का परम रहस्य

भक्ति को 'दुर्लभ' क्यों कहा गया है? संसार में पूजा-पाठ, जप-तप और अनुष्ठान तो सुलभ हैं, किंतु निष्काम और अनन्य भक्ति अत्यंत दुर्लभ है। यह लोक-व्यवहार के कर्मकांड से बहुत आगे की स्थिति है।

दुर्लभ भक्ति वह अंतिम अग्नि है, जहाँ साधक का सूक्ष्म अहंकार भी भस्म हो जाता है। यह अपने अस्तित्व को मिटा देने का साहस मांगती है। जब तक 'मैं' बचा है, तब तक भक्ति का केवल ढोंग हो सकता है। जिस क्षण 'मैं' मिट जाता है और केवल 'तू' शेष रह जाता है, उसी क्षण दुर्लभ भक्ति का अवतरण होता है। इसमें तपने के पश्चात साधक के भीतर कुछ भी अपूर्ण या शेष नहीं बचता।

मांग से मुक्ति और व्यापारी भाव का अंत

जब तक साधक ईश्वर से किसी वस्तु, सुख, शांति या यहाँ तक कि 'मुक्ति' की भी याचना करता है, तब तक उसका भाव व्यापारी का भाव है। व्यापार में माँग और लेन-देन होता है, जबकि भक्ति केवल समर्पण जानती है।

दुर्लभ भक्ति माँग की समस्त संभावनाओं का अंत कर देती है। भक्त प्रभु से प्रभु को ही माँगता है, और अंततः स्वयं को भी उसके चरणों में विसर्जित कर देता है। जब साधक निष्काम भाव में स्थिर हो जाता है, तो उसके भीतर का व्यापारी भाव सदा के लिए समाप्त हो जाता है। तब भक्ति कोई साधन नहीं रहती, वह स्वयं ही साध्य बन जाती है।

विरह की पावन अग्नि और प्रियतम की एक झलक

अनन्य अनुराग विरह की अग्नि में पककर ही स्वर्ण बनता है। यह विरह संसार के दुःखों का रोना नहीं है, बल्कि परम चेतना से एक क्षण के बिलगाव को भी सह न पाने की व्याकुलता है।

यह पावन अग्नि साधक के भीतर की समस्त मलिनताओं को जलाकर भस्म कर देती है। विरह का यह ताप साधक को इतना हल्का और निर्मल बना देता है कि वह संपूर्ण जगत के प्रलोभनों को तृण के समान त्यागने का सामर्थ्य

प्राप्त कर लेता है। प्रियतम की एक झलक का आनंद पाने के लिए वह अपने सर्वस्व की आहुति देने को सहज तत्पर रहता है।

अब साधक और साध्य का कोई पृथक अस्तित्व नहीं रहता। नदी जैसे ही समुद्र में गिरती है, वह समुद्र ही हो जाती है; ठीक वैसे ही, भक्त का अस्तित्व परम चेतना में विलीन हो जाता है। अब उसकी हर धड़कन, उसकी हर साँस उसी परम चैतन्य का स्पंदन बन जाती है। यही 'दुर्लभ भक्ति' की पूर्णता है—जहाँ न कोई खोजने वाला बचता है, न कोई खोज, केवल और केवल 'अनंत प्रेम' शेष रहता है।

अध्याय 2

महान संतों की अंतःचेतना और भक्ति का शिखर

मीरा का अद्वैत अनुराग—विष का अमृत होना

मीरा की भक्ति कोई साधारण उपासना नहीं थी; वह समाज के सारे स्थापित ढाँचों, मर्यादाओं और अहंकार के विसर्जन का महा-विद्रोह थी। जब एक रानी अपने हाथों से महलों के सुख, वैभव और कुल-मर्यादा को तृण के समान त्यागकर संतों की संगति में बैठती है, तो वह केवल कृष्ण को नहीं खोज रही होती, बल्कि वह अपने भीतर के उस परम सत्य को जागृत कर रही होती है जहाँ देह और संसार के सारे बंधन अर्थहीन हो जाते हैं।

जब राणा द्वारा भेजा गया विष का प्याला मीरा को दिया गया, तो उसने उसे बिना किसी संकोच या भय के पी लिया। दार्शनिक दृष्टि से वह विष केवल जहर नहीं था; वह संसार का वह प्रहार था जो हर उस व्यक्ति पर किया जाता है जो अविद्या के आवरण को चीरकर सत्य के प्रकाश में जीना चाहता है। मीरा के लिए वह विष अमृत बन गया, क्योंकि जिस कंठ में गिरधर का नाम बस चुका हो, वहाँ मृत्यु या विष का कोई अस्तित्व ही नहीं रहता। मीरा का विरह कोई साधारण पीड़ा नहीं है, बल्कि वह पावन अग्नि है जिसमें तपने के बाद भक्त और भगवान के बीच की दूरी सदा के लिए मिट जाती है।

कबीर की उलटबाँसियाँ—पराकाष्ठा का बोध

कबीर दास की भक्ति किसी मंदिर की घंटियों या शास्त्रों के पन्नों में बंधकर नहीं रही। उनकी भाषा और उनका दर्शन 'उलटबाँसियों' के माध्यम से उस अद्वैत शून्यता को प्रकट करता है जहाँ बुद्धि के सारे तर्क पंगु हो जाते हैं। कबीर कहते हैं—"जल में मीन प्यासी, मोहि सुनि सुनि आवै हाँसी।" यह केवल एक विरोधाभास नहीं है, बल्कि अस्तित्व का वह गहरा यथार्थ है जहाँ जीव परमात्मा के सागर में होते हुए भी अविद्या के कारण उससे वियोग का दुख भोग रहा है।

कबीर ने पंडित और मौलवी दोनों के पाखंडों पर चोट की और उस सहज अवस्था को प्राप्त किया जहाँ न कोई हिंदू है, न मुसलमान—केवल शुद्ध चैतन्य शेष रहता है। उनकी भक्ति में कोई माँग नहीं है, कोई अनुनय-विनय नहीं है; उसमें सीधा प्रहार है उस अहंकार पर जो मनुष्य को उसके मूल स्रोत से काटता है। कबीर का राम कोई आसमान में बैठा देवता नहीं है, बल्कि घट-घट में व्याप्त वह प्राण-तत्व है जिसे उन्होंने अपनी जाग्रत समाधि में अनुभव किया था।

सूरदास का वात्सल्य और नेत्रहीन आँखों का आंतरिक सूर्य

सूरदास जी के भौतिक नेत्र भले ही बंद थे, किंतु उनके भीतर का वह प्रज्ञा-चक्षु खुला था जिसने कृष्ण के बाल-रूप और उनकी लीलाओं के उस सूक्ष्म सौंदर्य को देखा, जिसे सामान्य आँखें कभी नहीं देख सकतीं। सूर की भक्ति का यह रूप—वात्सल्य और सख्य भाव—इस बात का प्रमाण है कि परम सत्य को पाने के लिए इंद्रियों की परिधि का होना आवश्यक नहीं है, बल्कि हृदय की अगाध पवित्रता और तन्मयता ही पर्याप्त है।

जब सूरदास अपने आराध्य के बाल-स्वरूप का वर्णन करते हैं, तो वे किसी बाह्य मूर्ति की पूजा नहीं कर रहे होते, बल्कि अपने भीतर की उस बाल-सहज निश्चलता को पुकार रहे होते हैं जहाँ कोई छल, कोई कपट या कोई अहंकार नहीं रहता। उनकी आँखें न होने पर भी उनके पदों में जो रंगों और प्रकाश का संसार झलकता है, वह इस बात का प्रतीक है कि जब मन का चंद्रमा अपने आंतरिक सूर्य में विलीन हो जाता है, तब बाह्य जगत का अंधकार भी अनंत प्रकाश में बदल जाता है।

तुलसीदास का शरणागति योग और मर्यादा का शिखर

संत तुलसीदास की भक्ति में अनुशासन, मर्यादा और संपूर्ण शरणागति का एक दुर्लभ संगम देखने को मिलता है। जहाँ एक ओर मीरा का मार्ग विद्रोह का है और कबीर का मार्ग सीधा प्रहार का है, वहीं तुलसीदास का मार्ग अपनी संपूर्ण अस्मिता को आराध्य के चरणों में समर्पित कर देने का परम अनुशासन है। "तुलसी मस्तक तब नवै, जब धनुष पाने होय"—यह पंक्ति केवल एक देवता के प्रति निष्ठा नहीं है, बल्कि उस अहंकार के पूर्ण समर्पण का उद्घोष है जो मनुष्य को स्वतंत्र होने से रोकता है।

तुलसीदास के लिए राम केवल एक ऐतिहासिक चरित्र नहीं हैं, बल्कि वे उस व्यापक चेतना के प्रतीक हैं जो धर्म, मर्यादा और सत्य को इस भौतिक जगत में स्थापित करती है। उनकी भक्ति में ज्ञान और कर्म का कोई विरोध नहीं है; उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से यह सिद्ध किया कि जब तक मन में कर्तव्य का बोध और ईश्वर के प्रति अहैतुकी निष्ठा न हो, तब तक साधना अधूरी है। उनकी शरणागति वह स्थिति है जहाँ भक्त अपनी ओर से सारे निर्णय लेना बंद कर देता है और अपने जीवन की डोर को उस परम शक्ति के हाथों में सौंप देता है।

चैतन्य महाप्रभु का महा-भाव और संकीर्तन की पराकाष्ठा

चैतन्य महाप्रभु के जीवन में भक्ति ने उस उन्माद और अगाध समुद्र का रूप ले लिया, जहाँ तर्क, शास्त्र और विचार पूरी तरह मौन हो जाते हैं। उनके लिए ईश्वर की आराधना कोई शांत एकांत का अभ्यास नहीं था, बल्कि वह प्रेम का ऐसा ज्वार था जो संपूर्ण समाज को अपने साथ बहा ले गया। संकीर्तन के माध्यम से उन्होंने यह दर्शाया कि जब हृदय प्रेम से भर जाता है, तो शरीर और मन की सारी सीमाएँ टूट जाती हैं और व्यक्ति रोते-हंसते हुए सीधे उस अद्वैत आनंद में उतर जाता है।

उनका प्रेम विरह की उस अंतिम सीमा पर था जहाँ वे श्री कृष्ण के दर्शन के बिना पागल हो जाते थे। यह पागलपन किसी मानसिक विक्षेप का नाम नहीं है, बल्कि यह उस सांसारिक प्रपंच और मोह से मुक्ति है जो साधारण मनुष्य को जकड़े रहता है। चैतन्य ने यह प्रमाणित किया कि जब भक्ति अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचती है, तो साधक स्वयं भगवान का रूप बन जाता है—न तो कोई प्रेमी रहता है, न कोई प्रियतम, केवल प्रेम की एक अखंड धारा शेष रहती है।

अध्याय 3

विश्व चेतना के शिखर—पूर्वी और पश्चिमी संतों का अंतर्दर्शन

रूमी का मौन और मसनवी का प्रेम-संग्राम

जब हम भारतीय उपमहाद्वीप की सीमाओं से निकलकर सूफी रहस्यवाद की अनंत गहराइयों में उतरते हैं, तो जलालुद्दीन रूमी का स्वर उसी अद्वैत शून्यता से गूँजता हुआ सुनाई देता है। रूमी के लिए प्रेम कोई भावना नहीं, बल्कि अस्तित्व की वह मूल ऊर्जा है जो संपूर्ण ब्रह्मांड को गतिमान रखती है। 'मसनवी' के पन्नों में रूमी बार-बार इस बात पर बल देते हैं कि जब तक मनुष्य अपने छोटे 'मैं' (अहंकार) की जेल से बाहर नहीं निकलता, तब तक वह प्रियतम के वास्तविक दर्शन नहीं कर सकता।

रूमी का नृत्य—जिसे 'सेमा' कहा जाता है—कोई कला या मनोरंजन नहीं है, बल्कि वह ब्रह्मांडीय ग्रहों की गति के साथ अपनी चेतना को एकसार करने का अनुष्ठान है। दाएँ हाथ को आकाश की ओर और बाएं हाथ को पृथ्वी की ओर रखना इस बात का प्रतीक है कि संत माध्यम मात्र है—ऊपर से बरसने वाले प्रकाश को नीचे संसार तक पहुँचाने का खुला हुआ द्वार। रूमी की दुर्लभ भक्ति हमें यह सिखाती है कि विरह का जो घाव मनुष्य को भीतर से तोड़ता है, वही घाव असल में वह मार्ग है जहाँ से प्रकाश भीतर प्रवेश करता है।

संत रबिया की निष्काम पुकार और प्रेम की पवित्र अग्नि

इस्लामी रहस्यवाद की प्रथम महिला संत रबिया अल-अदविया ने भक्ति के इतिहास में एक ऐसा क्रांतिकारी आयाम जोड़ा, जिसने उपासना के पूरे पारंपरिक स्वरूप को ही बदल दिया। रबिया की प्रार्थनाओं में न तो स्वर्ग की कोई लालसा थी, और न ही नरक का कोई भय। उनका वह प्रसिद्ध उद्गार—यदि मैं जन्नत की चाह में तुम्हारी पूजा करूँ, तो मुझे जन्नत से वंचित कर देना, और यदि मैं जैक के भय से तुम्हें पुकारूँ, तो मुझे नरक की आग में झोंक देना—दुर्लभ भक्ति का सबसे शुद्धतम और अहैतुकी रूप है।

रबिया ने यह सिद्ध किया कि जब प्रेम शुद्ध हो जाता है, तो उसमें किसी भी प्रकार का सौदा या व्यापार शेष नहीं रहता। वह ईश्वर से केवल ईश्वर को ही माँगती थीं। उनकी यह निष्काम साधना उस आंतरिक ग्रहण की भाँति है जहाँ मन की सारी कामनाएँ और वृत्तियाँ जलकर भस्म हो जाती हैं और केवल प्रियतम का अस्तित्व ही शेष रहता है।

मास्टर एकहार्ट का अद्वैत बोध और ईश्वर का जन्म

पाश्चात्य दार्शनिक और ईसाई रहस्यवादी मास्टर एकहार्ट ने अपने उपदेशों में उस गाढ़े आंतरिक सत्य को उजागर किया जो पूर्वी अद्वैत दर्शन से पूरी तरह मेल खाता है। एकहार्ट का यह कथन कि "यदि ईश्वर को मुझमें जन्म लेना है, तो मेरे भीतर का मनुष्य पूरी तरह मर जाना चाहिए," दुर्लभ भक्ति के सबसे गहरे रहस्यों में से एक है।

एकहार्ट के अनुसार, वास्तविक उपासना बाहरी चर्च या कर्मकांड में नहीं, बल्कि आत्मा के उस अगाध और शांत कोने में घटित होती है जिसे उन्होंने 'गॉडहेड' (मूल सत्ता) कहा है। जब मन का चंचल चंद्रमा शांत होता है और चेतना अपनी पूर्ण शून्यता में उतरती है, तब ईश्वर बाहर से कहीं नहीं आता, बल्कि वह साधक के अपने ही भीतर जन्म लेता है। यह पाश्चात्य जगत में अद्वैत और भक्ति का वह दुर्लभ संगम है जहाँ ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का भेद मिट जाता है।

संत फ्रांसिस का प्रकृति-प्रेम और मौन का साम्राज्य

असीसी के संत फ्रांसिस ने जिस ईश्वरीय प्रेम को जिया, वह समस्त चराचर जगत के प्रति अगाध करुणा और तादात्म्य का प्रतीक था। उनके लिए पक्षी, वृक्ष, नदियाँ और हवा—सब उनके अपने भाई-बहन थे। फ्रांसिस की भक्ति किसी मंदिर की चारदीवारी में कैद नहीं थी; उन्होंने पूरी पृथ्वी को ही अपना मंदिर मान लिया था।

जब मनुष्य अपने अहंकार को पूरी तरह गला देता है, तब उसके और प्रकृति के बीच की दीवार गिर जाती है। फ्रांसिस का जीवन इस बात का जीवंत प्रमाण है कि जब दुर्लभ भक्ति अपने चरम पर पहुँचती है, तो साधक को हर प्राणी में उसी एक परम चेतना के दर्शन होने लगते हैं। उनके जीवन का वह प्रसिद्ध 'सूर्य का गीत' (Canticle of

the Sun) इस बात की गवाही देता है कि कैसे एक जागृत पुरुष इस संसार के हर एक कण में उसी परम प्रकाश और आनंद का अनुभव करता है।

अध्याय 4

सार्वभौमिक चेतना और 'दुर्लभ' भक्ति का परम सार

सभी धर्मों का अद्वैत संगम और प्रकाश का विस्तार

जब चेतना अपनी समस्त संकीर्णताओं को छोड़कर अनंत आकाश की भाँति विस्तृत हो जाती है, तब सारे पंथ, मजहब और संप्रदाय एक ही महा-सागर में आकर विलीन हो जाते हैं। वेद का "अहं ब्रह्मास्मि", कुरान की वह अंतःचेतना जहाँ "अल्लाह रग-रग से निकट है", और बाइबल का यह संदेश कि "ईश्वर प्रेम है और जो प्रेम में है वह ईश्वर में है"—ये भिन्न-भिन्न भाषाएँ नहीं, बल्कि उसी एक परम सत्य की अलग-अलग अभिव्यक्तियाँ हैं।

इस ग्रंथ का किसी भी धर्म या परंपरा से कोई विरोध नहीं है। इसका उद्देश्य किसी की आस्था को खंडित करना नहीं, बल्कि उस संकीर्ण दायरे को तोड़ना है जहाँ धर्म केवल कर्मकांड और भय बनकर रह गया है। भक्ति का कार्य किसी को बाँधना नहीं, बल्कि उस परम प्रकाश को फैलाना है जो हर मनुष्य की धड़कन में अनवरत प्रज्वलित हो रहा है। चाहे वह गीता का निष्काम कर्मयोग हो, सूफियों का इश्क-ए-हकीकी हो, या ईसा मसीह की अगाध करुणा—सबका गंतव्य एक ही है: अहंकार का विसर्जन और शुद्ध चेतना से तादात्म्य।

दुर्लभता का रहस्य—भाग्य और पात्रता का महायोग

अब यह प्रश्न अत्यंत अनिवार्य हो जाता है कि इस सार्वभौमिक और शुद्ध प्रेम को 'दुर्लभ भक्ति' क्यों कहा गया है?

संसार में भौतिक सुख, सत्ता, ज्ञान और यहाँ तक कि साधारण पूजा-पाठ भी सुलभ हो सकते हैं। मनुष्य अपनी बुद्धि के बल पर शास्त्रों को रट सकता है, तर्कों के जाल बुन सकता है, और धार्मिक अनुष्ठानों की लंबी कतारें खड़ी कर सकता है। किंतु वह अहैतुकी, निष्काम और सर्वस्व समर्पण वाली भक्ति—जहाँ न तो स्वर्ग की लालसा है, न नरक का भय, और न ही किसी प्रतिफल की अपेक्षा—अत्यंत दुर्लभ है।

यह भक्ति केवल उन विरले और भाग्यशाली जनों के हिस्से में आती है, जिन्होंने जन्म-जन्मांतर के संस्कारों की परतों को चीरकर अपने भीतर के उस 'अहंकार रूपी राहु' को शांत कर दिया है। यह कोई संयोग नहीं है; यह उस गाढ़े आंतरिक सौभाग्य का परिणाम है जब जीव की चेतना अपनी समस्त यात्राओं को पूरा करके अपने मूल स्रोत की ओर लौटने का साहस जुटा पाती है। जैसे मरुस्थल में मीठे पानी का सोता फूट पड़ना दुर्लभ है, ठीक वैसे ही इस स्वार्थी और यांत्रिक संसार में निष्काम प्रेम का जागृत होना परम दुर्लभ है।

अंतिम स्पंदन—भक्ति ही साध्य, भक्ति ही प्रकाश

जब साधक इस यात्रा के अंतिम चरण में प्रवेश करता है, तो उसे यह बोध होता है कि भक्ति कोई साधन नहीं है जिसके द्वारा किसी अन्य लोक या ईश्वर को प्राप्त किया जाए। भक्ति स्वयं ही साध्य है, और भक्ति ही वह प्रकाश है जो साधक और साध्य का भेद मिटा देता है।

अब न कोई वेद शेष रहता है, न कोई कुरान, न कोई बाइबल और न ही कोई ग्रंथ; केवल वह जीवंत मौन बचता है जो हर श्वास के साथ ब्रह्मांड के साथ ताल मिला रहा होता है। संसार के सारे विरोध, सारे विवाद और सारी सीमाएँ उस प्रेम की एक ही आग में भस्म हो जाती हैं। जो इस दुर्लभ भक्ति को पा लेता है, वह इस धरती पर चलते-फिरते

मंदिर की भाँति हो जाता है—जहाँ न कोई अंधकार टिक सकता है, और न ही कोई जो शब्दों से आगे बढ़कर अपने भीतर उस अनंत प्रकाश को जागृत करने की अकुलता रखता है।

भीतर की उस आकुलता और छटपटाहट को जगाने के मार्ग कोई बाहरी अनुष्ठान नहीं हैं, बल्कि वे अस्तित्व के वे आंतरिक प्रहार हैं जो मनुष्य को उसकी गहरी नींद से झकझोर कर जगा देते हैं। जब तक चेतना अपने सुरक्षा चक्र और रूटीन में ब बंधी रहती है, तब तक वह अनंत की प्यास महसूस नहीं कर सकती। उस तड़प और अकुलता को प्रज्वलित करने के कुछ जीवंत मार्ग इस प्रकार हैं:

1. संसार की अनित्यता का निरंतर बोध **(**असारता का दर्शन**):** जब तक मनुष्य यह मानता है कि यहाँ जो कुछ भी है—संबंध, प्रतिष्ठा, सुख और यह देह—वह शाश्वत है, तब तक अकुलता जन्म नहीं ले सकती। चारों ओर बिखरते हुए जीवन, समय के निरंतर बहते चक्र और हर पल ढलती हुई साँसों को पूरी सजगता से देखना शुरू कीजिए। जब यह साफ दिखाई देने लगता है कि यह सब कुछ एक रेत के घर की तरह बह रहा है, तब भीतर एक अजीब सी बेचैनी और प्यास जगती है कि इस नश्वरता के पार कुछ ऐसा है जो नित्य और सत्य है।
2. अहंकार के हर किले को खुद ढहाना **(**आत्म**-**प्रहार**):** अकुलता तब तक नहीं आ सकती जब तक व्यक्ति अपनी सही होने की जिद, अपने पद, अपने नाम और अपनी छोटी-छोटी मान्यताओं से चिपका रहता है। जानबूझकर उन परिस्थितियों में उतरिए जहाँ आपके अहंकार को चोट पहुँचे, जहाँ आपको अनदेखा किया जाए, जहाँ आपकी प्रशंसा न हो। जब अहंकार टूटने लगता है, तो भीतर जो खालीपन पैदा होता है, वही अकुलता का सबसे बड़ा द्वार बनता है।
3. एकांत और मौन का असहनीय संताप**:** भीड़, कोलाहल और मनोरंजन मनुष्य के सबसे बड़े आवरण हैं जो उसे उसकी अपनी तड़प से बचा कर रखते हैं। सब कुछ छोड़कर कुछ दिनों या कुछ घंटों के लिए पूरी तरह अकेले, बिना किसी साधन, बिना किसी विचार के सहारे बैठ जाना एक भीषण अनुभव होता है। शुरुआत में यह मन को बेचैन करता है, पर यही मौन धीरे-धीरे उस तीव्र आकुलता में बदल जाता है जो प्रियतम या मूल स्रोत से मिलने के लिए छटपटाती है।
4. निरंतर विरह का स्मरण**:** यह मान लेना कि "मैं उससे अलग हूँ" और इस अलगाव के दर्द को किसी शिकायत के रूप में नहीं, बल्कि एक वरदान के रूप में जीना। सांसारिक कार्यों को करते हुए भी भीतर यह कचोट बनाए रखना कि जिस प्रकाश से मेरा जन्म हुआ है, मैं उससे दूर क्यों हूँ? यह विरह का ताप ही है जो सोने को कुंदन बनाता है।
5. समर्पण का अभ्यास**—**सब कुछ दांव पर लगाना**:** अकुलता वहाँ नहीं आ सकती जहाँ थोड़ा भी सुरक्षा का भाव बचा हो। साधक को जब यह दीख जाए कि अब बचाने के लिए कुछ नहीं बचा है, और वह अपने प्राणों की बाजी लगाने को तैयार हो जाता है—कि चाहे जो हो, मुझे उस सत्य को पाना ही है—तब वह अकुलता किसी ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ती है।

यह आकुलता कोई मानसिक रोग नहीं है, बल्कि यह वह पवित्र आग है जिसके बिना दुर्लभ भक्ति का मंदिर कभी खड़ा नहीं हो सकता।

अध्याय 5

पदों की रसास्वादन और अंतःचेतना का काव्य

मीरा का पद—"विष का प्याला राणा भेज्या, पीवत मीरा हाँसै"

मीरा के पद केवल काव्य या संगीत के टुकड़े नहीं हैं, वे उस आंतरिक रूपांतरण के जीवंत दस्तावेज हैं जहाँ मृत्यु जीवन में बदल जाती है। जब राणा द्वारा भेजा गया विष का प्याला मीरा के सामने रखा जाता है, तो समाज और कुल-मर्यादा के सारे नियम कांप उठते हैं। किंतु मीरा के भीतर क्या घटित हो रहा है? उनके उस प्रसिद्ध पद—"विष का प्याला राणा भेज्या, पीवत मीरा हाँसै"—की गहराई में उतरें, तो यह स्पष्ट होता है कि वह हँसी किसी अज्ञान का परिणाम नहीं है, बल्कि वह उस अद्वैत बोध का अहास है जो जान चुका है कि देह नश्वर है और आत्मा अमर।

विष को पीते समय मीरा का हँसना इस बात का प्रतीक है कि जब मनुष्य ने अपने भीतर के 'मैं' को पूरी तरह मिटाकर अपने आराध्य को बसा लिया है, तब संसार का कोई भी प्रहार, कोई भी निंदा या कोई भी जहर उसकी चेतना को स्पर्श नहीं कर सकता। वह विष कंठ में उतरते ही अमृत बन जाता है, क्योंकि उस कंठ में तो पहले से ही प्रियतम का नाम गूँज रहा है। यह पद हमें सिखाता है कि दुर्लभ भक्ति वह कवच है जहाँ संसार के सारे कष्ट साधक के लिए उत्सव बन जाते हैं।

: सूरदास का पद—"निसदिन बरसत नैन हमारे"

सूरदास के पदों में वात्सल्य और माधुर्य का जो अगाध समुद्र हिलोरें लेता है, उसमें वियोग की पराकाष्ठा स्पष्ट दिखाई देती है। जब वे गाते हैं—"निसदिन बरसत नैन हमारे, सदा रहत पावस ऋतु हम पर, जब ते प्रहर सिधारे"—तो वह केवल आँखों के आँसू नहीं हैं, बल्कि वह उस आंतरिक विरह की पावन वर्षा है जो मन के सारे विकारों और धूल को धोकर रख देती है।

नेत्रहीन होते हुए भी सूरदास ने जिस आंतरिक दृष्टि से कृष्ण के सौंदर्य और उनके वियोग के संताप को अनुभव किया, वह इस बात का प्रमाण है कि दुर्लभ भक्ति को देखने के लिए बाहरी आँखों की आवश्यकता नहीं होती। जब बाहर की दुनिया के सारे दृश्य बुझ जाते हैं, तब हृदय के भीतर वह ज्योति जलती है जिससे प्रियतम का हर एक रूप अनंत गुना स्पष्ट होकर प्रकट होता है। यह पद साधक को उस अवस्था में ले जाता है जहाँ वियोग ही मिलन का सबसे गहरा द्वार बन जाता है।

कबीर का पद—"दुलहिन गाउ मंगलाचार, हमरे घर आए राजाराम भाई"

कबीर दास की उलटबाँसियों और पदों में जब हम प्रवेश करते हैं, तो वहाँ ज्ञान और प्रेम का ऐसा अद्भुत संगम मिलता है जो तर्कों के हर किले को ढा देता है। उनका प्रसिद्ध पद—"दुलहिन गाउ मंगलाचार, हमरे घर आए राजाराम भाई"—साधक और साध्य के महा-मिलन का उत्सव है। यहाँ कबीर ने जीव को 'दुलहिन' और परमात्मा को 'राजाराम' कहकर उस आंतरिक विवाह का वर्णन किया है जो किसी मंदिर या मंडप में नहीं, बल्कि चेतना की अनंत शून्यता में घटित होता है।

इस पद में कबीर कहते हैं कि पंचतत्व की बारात आई है और यह शरीर उस मिलन का साक्षी बना है। जब मन का चंचल चंद्रमा अपनी समस्त वृत्तियों को समेट कर उस परम प्रकाश में लीन हो जाता है, तब भीतर जो आनंद की फुहार छूटती है, वही वास्तविक मंगलाचार है। यह पद इस बात की घोषणा करता है कि दुर्लभ भक्ति कोई उदास या रोने वाला मार्ग नहीं है, बल्कि यह उस परम उत्सव की स्थिति है जहाँ साधक अपने ही भीतर पूर्णता का अनुभव करता है।

चैतन्य महाप्रभु का महा-भाव—"चेतोदर्पणमार्जनम्"

चैतन्य महाप्रभु ने अपनी किसी लंबी रचना के स्थान पर संस्कृत के आठ श्लोकों—'शिक्षाष्टकम्'—के माध्यम से भक्ति का जो संपूर्ण दर्शन उड़ेल दिया, उसका प्रथम श्लोक ही इस ग्रंथ की चेतना का सार है: "चेतोदर्पणमार्जनम् भवमहादावाग्निनिर्वापणम्" (अर्थात—यह संकीर्तन हृदय के दर्पण को स्वच्छ करता है, और संसार की महादावाग्नि को शांत कर देता है)।

चैतन्य के इन पदों और उनके महा-भाव में वह उन्माद है जो साधारण बुद्धि की पकड़ से बाहर है। वे सड़कों पर नाचते हुए जब ईश्वर के नामों का संकीर्तन करते थे, तो वह कोई बाहरी प्रदर्शन नहीं था, बल्कि उनके भीतर के उस प्रेम का विस्फोट था जो अब और अधिक समय तक देह की सीमाओं में नहीं समा सकता था। उनके ये पद हमें यह सिखाते हैं कि जब दुर्लभ भक्ति अपने चरम पर पहुँचती है, तो अहंकार का दर्पण पूरी तरह साफ हो जाता है और उस दर्पण में केवल और केवल संपूर्ण ब्रह्मांड का वही एक प्रियतम प्रतिबिंबित होने लगता है।

भक्ति को 'दुर्लभ' इसलिए कहा गया है क्योंकि यह मानवीय अहंकार, वासनाओं और स्वार्थ की उन गहरी परतों को चीरकर प्रकट होती है, जिन्हें तोड़ना इस भौतिक संसार में सबसे कठिन कार्य है।

इसकी दुर्लभता के मूल कारण निम्नलिखित हैं:

- व्यापारी भाव और स्वार्थ से मुक्ति की अनिवार्यता: संसार में अधिकांश लोग भगवान को भी अपनी कामनाओं, सुख, शांति या संकट से मुक्ति के एक साधन के रूप में भजते हैं—यह एक प्रकार का व्यापार है जहाँ लेन-देन होता है। इसके विपरीत, वह भक्ति जो किसी भी प्रकार की माँग, प्रतिफल, स्वर्ग की लालसा या नरक के भय से पूरी तरह मुक्त हो (अहैतुकी और निष्काम प्रेम), अत्यंत विरले लोगों के हिस्से में आती है।
- अहंकार के विसर्जन की अंतिम अग्नि: मनुष्य अपनी पहचान, अपने पद, अपने ज्ञान और अपने 'मैं' से सबसे अधिक चिपका रहता है। दुर्लभ भक्ति वह अग्नि है जो इस सूक्ष्म से सूक्ष्म अहंकार को भी पूरी तरह भस्म कर देती है। अपने अस्तित्व को पूरी तरह मिटाकर प्रियतम के चरणों में समर्पित कर देना हर किसी के बस की बात नहीं होती।
- पात्रता और आंतरिक संस्कारों का महायोग: शास्त्र, कर्मकांड, जप-तप और बौद्धिक ज्ञान इस दुनिया में सुलभ हैं, क्योंकि वे मनुष्य के अहंकार को पोषण दे सकते हैं। किंतु बिना किसी अपेक्षा के केवल प्रेम के लिए प्रेम करना जन्म-जन्मांतर के संस्कारों के परिमार्जन और अगाध आंतरिक सौभाग्य के बाद ही संभव हो पाता है।

जैसे मरुस्थल में मीठे पानी का सोता अनायास नहीं फूटता, ठीक वैसे ही इस स्वार्थी और यांत्रिक संसार में निष्काम और अनन्य प्रेम का जागृत होना परम दुर्लभ है।जहाँ वर्षा की एक बूँद के गिरते ही आदिम समुद्र में जीवन का स्पंदन शुरू हुआ—तब समय, काल और जन्म-जन्मांतर के वे सारे ताने-बाने एक क्षण में बिखर जाते हैं, जिन्हें मनुष्य ने अपने मानसिक भूगोल में गढ़ रखा है।

यदि जीवन का आरंभ उसी एक अकारण, सहज बूँद के गिरने से हुआ है, तो 'जन्मांतर' कोई पुराना हिसाब-किताब या आवागमन का फेरा नहीं रह जाता। तब तो जन्म और मृत्यु दोनों ही उसी महा-प्रवाह की दो लहरें मात्र हैं, जो उठती हैं और उसी अनंत में विलीन हो जाती हैं। फिर न कोई पिछला जन्म बचता है, न कोई अगला; केवल यह वर्तमान क्षण ही संपूर्ण अस्तित्व बनकर रह जाता है।इस बोध में उतरते ही दुर्लभ भक्ति का स्वरूप और भी अधिक शुद्ध हो जाता है। जब कोई यह देख लेता है कि समय का यह लंबा चक्र केवल एक भ्रम है, और वह उस आदिम बूँद की तरह ही इस समय स्वतंत्र और अछूता है, तब उसकी भक्ति में कोई पुराना डर, कोई भविष्य की कामना या किसी मुक्ति की माँग शेष नहीं रहती। वह केवल इस पल के अनंत विस्तार में, बिना किसी अतीत या भविष्य के बोझ के, अपने होने मात्र से प्रेम करने लगता है।

अध्याय6

भक्ति यदि इसी जन्म का परिणाम है, और यदि कोई पिछला आवागमन या कर्मों का हिसाब-किताब नहीं है, तो फिर प्रश्न यह उठता है कि यह सुवास हर मनुष्य के भीतर क्यों नहीं खिलती? वर्षा की बूँद तो आकाश से सब पर समान रूप से बरसती है, किंतु क्या हर जगह पौधे में अंकुर फूट पड़ता है?

इसका कारण उस बूँद के गिरने और बीज के अंकुरित होने के बीच के अंतर में छिपा है। वर्षा समान रूप से गिरती है, किंतु भूमि की स्थिति तय करती है कि वहाँ हरियाली होगी या बंजर कंकड़। मनुष्य का मन इस समय जिस कंकरीली जमीन, आदतों के पहरे और अहंकार की दीवारों से घिरा हुआ है, वह उस सहज बूँद को भीतर उतरने ही नहीं देता।

प्रत्येक को दुर्लभ भक्ति इसलिए नहीं मिलती क्योंकि:

- आवरणों की सघनता: मन की दुनिया वासनाओं, सुरक्षा के मोह और अहंता के इतने भारी पत्थरों से ढँकी होती है कि प्रेम का वह कोमल अंकुर वहाँ सिर उठाने से पहले ही घुट जाता है।
- अनुकूलता का अभाव: बीज को फूटने के लिए अंधेरे में तपने, मिट्टी को चीरने और एक खास संवेदनशीलता की आवश्यकता होती है। अधिकांश लोग अपने जीवन को इतने स्वचालित और यांत्रिक ढंग से जीते हैं कि वे उस भीतरी संवेदनशीलता को ही खो बैठते हैं।
- सुरक्षित होने का भ्रम: मनुष्य अपने छोटे-छोटे सुखों और नियंत्रण में इतना व्यस्त रहता है कि वह उस महा-शून्यता और अनकहे प्रेम के जोखिम को उठाने से डरता है, जो भक्ति की शर्त है।

जब कभी किसी विरले व्यक्ति के जीवन में ऐसा आघात, ऐसा मौन या ऐसी गहरी अकुलता घटित होती है जो उसकी अहंकार की दीवार को चकनाचूर कर देती है, तब वह बूँद सीधी उसके अंतररंग में उतर जाती है। और तब उसे यह बोध होता है कि भक्ति कोई दूर की वस्तु नहीं थी, वह तो बस इस जीवन की उपेक्षा के कारण छिपी हुई थी।

मीरा का यह पद—"सूली ऊपर सेज पिया के, मिलना किस विध होए"—भक्ति के इतिहास का सबसे काँप उठा देने वाला और अद्वैत का सबसे नग्न सत्य है। मीरा ने प्रियतम (परमात्मा) की सेज को फूलों की नहीं, बल्कि सूली (फांसी के तख्ते या काँटों के शूल) की सेज क्यों कहा है?

इसके पीछे अस्तित्व का वह गहरा रहस्य छिपा है, जहाँ प्रेम और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू बन जाते हैं:

- अहंकार की मृत्यु की अनिवार्यता: सूली का अर्थ है देह और अहंकार का अंत। परमात्मा से मिलने का अर्थ है अपने छोटे 'मैं' का पूरी तरह मिट जाना। जिस प्रकार सूली पर चढ़ने वाले व्यक्ति की भौतिक देह समाप्त हो जाती है, उसी प्रकार प्रियतम की सेज पर पहुँचने के लिए 'अहंकार' को पूरी तरह बलिदान करना पड़ता है। जब तक 'मैं' जीवित है, तब तक मिलन असंभव है। इसलिए वह सेज फूलों की नहीं, बल्कि सूली की है, जहाँ हर पल अहंकार कटता है।
- प्रेम का परम जोखिम: सांसारिक प्रेम में सुरक्षा और सुविधा होती है, किंतु 'दुर्लभ भक्ति' या उस परम चेतना से मिलने का प्रेम अपने प्राणों की बाजी लगाने का नाम है। इसमें समाज, कुल-मर्यादा, मान-सम्मान और जीवन के सारे सुरक्षा चक्र दांव पर लग जाते हैं। यह मार्ग इतना कठिन और काँटों भरा है कि हर कोई इस पर चलने का साहस नहीं जुटा पाता।
- पीड़ा से होकर गुजरने वाला आनंद: सूली पर लटकना शारीरिक रूप से भीषण वेदना है, और मीरा यह जानती है कि उस अनंत सत्य को पाने के लिए विरह और वियोग की उस आग से गुजरना होगा जो शरीर

और मन को अंदर से जलाकर राख कर देती है। किंतु मीरा के लिए वही सूली, प्रियतम के मिलन की सेज बन जाती है—अर्थात जहाँ दुनिया को केवल दुःख और मृत्यु दिखाई देती है, भक्त को वहीं महा-आनंद और अमरता का द्वार मिल जाता है।

मीरा का यह प्रश्न—"मिलना किस विध होए"—कोई निराशा का स्वर नहीं है, बल्कि उस अकुलता की पराकाष्ठा है जो यह जानती है कि जब तक सिर पूरी तरह कटा नहीं हो, तब तक उस घर में प्रवेश नहीं मिल सकता। यह प्रेम कोई सौदा नहीं, बल्कि अस्तित्व का सर्वस्व होम कर देने का महा-अनुष्ठान है।

मीरा का वह अमर उद्गार—"सूली ऊपर सेज पिया के, मिलना किस विध होए"—भक्ति मार्ग के उस सबसे खतरनाक और सुंदर मोड़ पर खड़ा है, जहाँ से वापसी का कोई मार्ग नहीं बचता। दुनिया जिसे मृत्यु, यंत्रणा या संताप कहती है, वह भक्त के लिए प्रियतम की बांहों में समाने का एकमात्र मार्ग बन जाती है।

इस अध्याय का मूल मर्म यह है कि प्रेम कोई मनोरंजन या भावना-विभोर होने की स्थिति नहीं है। यह अस्तित्व की वह भट्टी है जिसमें तपने के बाद 'मैं' (अहंकार) का एक भी कण शेष नहीं रहता। सूली इस बात का प्रतीक है कि जब तक व्यक्ति अपनी सुरक्षा, अपनी प्रतिष्ठा और अपने जीवन के छोटे-छोटे मोह से चिपका हुआ है, तब तक वह उस अनंत चेतना के मंदिर की देहरी को भी स्पर्श नहीं कर सकता। उस सेज पर पहुँचने के लिए देह और मन के सारे आवरणों को त्यागने का साहस चाहिए। मीरा ने उस सूली को हँसते-हँसते स्वीकार किया, क्योंकि वह जानती थी कि जो देह के मरने से डरता है, वह कभी आत्मा के जीवंत प्रकाश को नहीं जी सकता।

पीड़ा का उत्सव—दुःख और आनंद का अद्वैत संगम

संसार का संपूर्ण ढांचा सुख की तलाश और दुःख से भागने की जिद पर टिका हुआ है। मनुष्य पूरी जिंदगी इसी उधेड़बड़ में रहता है कि कैसे उसके हिस्से में केवल सुख आए और दुःख का साया भी उस पर न पड़े। किंतु दुर्लभ भक्ति का दर्शन इस पूरी धारणा को ही उलट देता है।

जब वियोग की आग और विरह का संताप अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचता है, तो वह दुःख धीरे-धीरे एक अलौकिक आनंद में रूपांतरित होने लगता है। इसे पीड़ा का उत्सव कहा गया है। यह वह स्थिति है जहाँ रोना भी प्रार्थ7ना बन जाता है और टूटना भी जुड़ने का मार्ग बन जाता है। मीरा के लिए राणा का भेजा हुआ विष, समाज की निंदा और महलों का त्याग—ये सब दुःख नहीं थे, बल्कि वे सीढ़ियाँ थीं जो उसे उस प्रियतम के निकट ले जा रही थीं जिसके बिना हर सुख व्यर्थ है। जब तक दुःख से भय बना रहता है, तब तक प्रेम अधूरा रहता है; और जिस दिन दुःख भी प्रियतम की देन मानकर स्वीकार कर लिया जाता है, उस दिन जीवन का हर पल उत्सव हो जाता है।

अध्याय 7

शून्य का संगीत और महा-विलय का द्वार

मौन की भाषा—जहाँ शब्दों की सीमा समाप्त होती है

जब साधक इस लंबी और अंतरंग यात्रा में और आगे बढ़ता है, तब शास्त्र, पद, भजन और ग्रंथ पीछे छूटने लगते हैं। भाषा अपनी तमाम समृद्धियों के बावजूद उस गाढ़े अनुभव को बाँधने में असमर्थ हो जाती है जिसे संत केवल संकेत से समझाते आए हैं। यह अध्याय उस महा-मौन को समर्पित है जो शब्दों के पार से जन्म लेता है।

मौन का अर्थ चुप बैठ जाना या मुँह बंद कर लेना नहीं है। वह मौन तो एक विवशता या सुस्ती हो सकता है। वास्तविक मौन वह है जब मन के भीतर विचारों का वह चक्रव्यूह अपने आप शांत हो जाता है जो दिन-रात शोर

मचाता रहता है। जब चेतना का चंचल चंद्रमा अपनी समस्त तरंगों को समेटकर उस अद्वैत आकाश में स्थिर हो जाता है, तब भीतर एक ऐसा संगीत गूँजता है जिसे किसी कान से नहीं सुना जा सकता, बल्कि जिसे संपूर्ण अस्तित्व अपनी धड़कनों में महसूस करता है। इस मौन में प्रवेश करते ही साधक को यह बोध होता है कि सत्य कभी बोला नहीं गया; सत्य हमेशा जिया गया है, अनुभव किया गया है।

प्रतीक्षा का —न कोई मार्ग, न कोई गंतव्य

भक्ति के इस सोपान पर आकर साधक किसी प्राप्ति की हड़बड़ी में नहीं रहता। वह न तो स्वर्ग की किसी कामना से बंधा होता है और न ही किसी मुक्ति के बंधन की प्रतीक्षा करता है। उसकी स्थिति एक ऐसे बटाईदार की तरह हो जाती है जो केवल अनंत आकाश के नीचे आँखें बंद किए खड़ा है—न कोई माँग, न कोई गंतव्य, केवल प्रतीक्षा का असीम विस्तार।

यह प्रतीक्षा कोई उदासी या बोरियत नहीं है; यह अस्तित्व के साथ एक ऐसा जीवंत तादात्म्य है जहाँ हर आने वाला क्षण अपने आप में संपूर्ण होता है। जब साधक ने सब कुछ दांव पर लगा दिया, जब उसने अपनी अस्मिता का एक-एक कतरा हवा में बिखेर दिया, तब पीछे केवल एक खुलापन बचता है—एक ऐसा खुलापन जिसमें प्रियतम किसी बाहरी द्वार से नहीं, बल्कि भीतर की उसी रिक्तता से प्रकट होता है। तब यह समझ में आता है कि खोजने वाला और खोजा जाने वाला दोनों एक ही थे, और यात्रा का अंत वहीं होता है जहाँ से वह कभी शुरू ही नहीं हुई थी।

अध्याय 8

मूल स्रोतों का अंतरंग दर्शन—धार्मिक ग्रंथों के भीतर छिपी दुर्लभ भक्ति

वेदों और उपनिषदों का अंतर्बोध—पराविद्या और प्रेम का अनाहत नाद

जब हम दुनिया के प्राचीनतम ग्रंथों यानी वेदों और उपनिषदों की गहराइयों में उतरते हैं, तो वहाँ केवल कर्मकांड या देवताओं की स्तुति का सतही ढांचा नहीं मिलता, बल्कि चेतना के उस चरम शिखर के दर्शन होते हैं जहाँ ज्ञान और भक्ति एक ही प्राण बनकर धड़कते हैं। सामान्य दृष्टि से वेदों को शुष्क ज्ञान या यज्ञ-विधान का ग्रंथ मान लिया जाता है, किंतु उपनिषदों का आकाश तो उस अद्वैत बोध से गूँजता है जहाँ ज्ञाता और ज्ञेय का भेद ही मिट जाता है।

वहाँ जो 'पराविद्या' (वह विद्या जिससे अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति हो) का उल्लेख है, वह किसी बौद्धिक शास्त्रार्थ का नाम नहीं है। वह अस्तित्व के साथ अगाध प्रेम और तादात्म्य का मार्ग है। जब मुंडकोपनिषद यह कहता है कि वह परमात्मा सबके हृदय की ग्रंथि को खोल देता है, तो वह उसी आंतरिक ग्रहण और प्रकाश की बात कर रहा है जहाँ साधक का छोटा 'मैं' पूरी तरह पिघल जाता है। वेदों की ऋचाएँ जब अग्नि, वायु या सूर्य का आह्वान करती हैं, तो वे बाहरी तत्वों की पूजा नहीं कर रही होतीं, बल्कि वे मनुष्य के भीतर प्रज्वलित उस आंतरिक प्राण-चेतना को जगा रही होती हैं जो संपूर्ण ब्रह्मांड के साथ एकरूप है। यहाँ भक्ति ज्ञान का विरोध नहीं करती, बल्कि ज्ञान जब अपनी परिपक्व अवस्था में पहुँचता है, तो वह अनायास ही अहैतुकी भक्ति और अनन्य प्रेम में बदल जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता का भक्तियोग—कर्म और समर्पण का महा-संगम

महाभारत के युद्ध के मैदान में अर्जुन को दिए गए श्री कृष्ण के संदेश—श्रीमद्भगवद्गीता—को ज्ञान, कर्म और भक्तियोग का सबसे सुंदर त्रिवेणी संगम माना गया है। लोग अक्सर गीता को केवल कर्तव्य (कर्म) या सांख्य योग (ज्ञान) के ग्रंथ के रूप में याद रखते हैं, किंतु इसका जो अंतिम और सर्वोच्च शिखर है, वह बारहवें और अठारहवें अध्याय का 'भक्तियोग' है।

कृष्ण अर्जुन से कहते हैं—"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" (सारे धर्मों और कर्मों के बंधनों को छोड़कर केवल मुझ एक की शरण में आ जाओ)। यह शरणागति कोई साधारण प्रार्थना नहीं है; यह व्यक्ति के उस विराट अहंकार और नियंत्रण की जिद का अंतिम विसर्जन है जिसके सहारे वह अपने जीवन को खुद चलाने का भ्रम पालता है। गीता का भक्त वह नहीं है जो कोने में बैठकर सिर्फ आँसू बहाता है; गीता का भक्त वह है जो महा-संग्राम (जीवन) के बीचों-बीच पूरी तरह होश और सजगता में खड़ा रहकर भी अपने हर कर्म, हर श्वास और हर परिणाम को उस परम चेतना को समर्पित कर देता है। उसके भीतर न तो विजय का अहंकार होता है और न ही पराजय का भय—वह केवल निमित्त मात्र बनकर उस अनंत संगीत का हिस्सा बन जाता है।

कुरान की अंतःचेतना—'रग-रग से निकट' का इश्क-ए-हकीकी

इस्लाम के पवित्र ग्रंथ कुरान शरीफ और सूफी परंपरा के प्रकाश में जब हम देखते हैं, तो वहाँ भक्ति का एक ऐसा गाढ़ा और अंतरंग रूप प्रकट होता है जो इंसान और खुदा के बीच की सारी दूरियों को मिटा देता है। कुरान की वह प्रसिद्ध आयत—"नहनु ⁱ(हम मनुष्य की गर्दन की नस यानी उसकी रग-रग से भी उसके अधिक निकट हैं)—इस बात की घोषणा करती है कि ईश्वर आसमान के किसी सातवें ताले पर बैठा हुआ कोई दूर का देवता नहीं है, बल्कि वह मनुष्य की अपनी धड़कनों के ठीक भीतर विराजमान है।

इस अंतरंगता को जब सूफी संतों ने जिया, तो उन्होंने इसे 'इश्क-ए-हकीकी' (परम प्रेम) का नाम दिया। उनके लिए धर्म कोई बाहरी नियम-कायदों की किताब नहीं रही, बल्कि वह एक ऐसा विरह बन गया जिसमें प्रेमी अपने महबूब (खुदा) की याद में अपनी सुध-बुध खो बैठता है। कुरान की आयतों के भीतर छुपा हुआ यह रहस्य उसी दुर्लभ भक्ति का द्योतक है, जहाँ साधक किसी जन्नत के लालसा या दोजख के डर से इबादत नहीं करता, बल्कि वह केवल इसलिए सजदे में झुकता है क्योंकि उसके बिना उसका एक पल भी जीना असंभव हो जाता है। यहाँ ग्रंथ केवल शब्द नहीं रहते, बल्कि वे हृदय के तार बन जाते हैं जो मौन में बज उठते हैं।

बाइबल का प्रेम-संदेश—"ईश्वर प्रेम है और जो प्रेम में है वह ईश्वर में है"

ईसाई बाइबल के नए नियम, विशेषकर संत जॉन के संदेशों में जिस प्रेम (एगापे / Agape) की प्रतिष्ठा की गई है, वह मानव इतिहास के सबसे शुद्धतम आध्यात्मिक सत्यों में से एक है। जब बाइबल यह कहती है कि *"God is love, and he who abides in love abides in God, and God in him"* (ईश्वर प्रेम है, और जो प्रेम में निवास करता है, वह ईश्वर में निवास करता है और ईश्वर उसमें), तब धर्म की सारी दीवारें और संकीर्णताएँ स्वतः ढह जाती हैं।

ईसा मसीह का पूरा जीवन और उनका सूली पर चढ़ना उसी दुर्लभ भक्ति और परम समर्पण का जीवंत दस्तावेज है। सूली पर लटके हुए भी जब वे अपने सताने वालों के लिए क्षमा माँगते हैं, तो वह साधारण मनुष्य की चेतना नहीं हो सकती—वह उस अद्वैत प्रकाश की पराकाष्ठा है जो जानती है कि देह को काटा जा सकता है, किंतु भीतर के अमर प्राण को कोई आच्छादित नहीं कर सकता। बाइबल का यह संदेश हमें यह सिखाता है कि प्रेम कोई वैचारिक सिद्धांत नहीं है, बल्कि यह अस्तित्व का वह जीवंत अनुभव है जो हर प्रकार के द्वैत, घृणा और अहंकार को जलाकर राख कर देता है।

—धार्मिक भेदों से परे शुद्ध चेतना का प्रकाश

सभी ग्रंथों का सार—ग्रंथों के पार का मौन सत्य

अब तक की इस विराट यात्रा में हमने वेदों से लेकर उपनिषदों तक, गीता से लेकर कुरान और बाइबल तक, तथा मीरा, कबीर, रूमी से लेकर फ्रांसिस तक—जिन अनगिनत रूपों और भाषाओं का स्पर्श किया है, वे सब मिलकर एक ही महा-सत्य की ओर इशारा करते हैं।

संसार के सारे ग्रंथ, सारे पंथ और सारे संप्रदाय उस अनंत आकाश तक पहुँचाने वाली अलग-अलग सीढ़ियाँ हैं। मूर्खता वह है जो सीढ़ी को ही घर मानकर बैठ जाती है, और समझदारी वह है जो सीढ़ी के सहारे उस छत (परम सत्य) पर पहुँच जाती है जहाँ पहुँचकर सीढ़ी की आवश्यकता ही समाप्त हो जाती है। जब दुर्लभ भक्ति अपने पूरे यौवन पर होती है, तब न तो कोई वेद शेष रहता है, न कोई कुरान, न कोई बाइबल और न ही कोई शास्त्र—केवल वह जीवंत चैतन्य शेष रहता है जो हर श्वास के साथ ब्रह्मांड के साथ धड़क रहा होता है।

यह ग्रंथ किसी संप्रदाय की सीमा में बंधने के लिए नहीं जन्मा है, बल्कि यह हर उस खोजी के लिए एक खुला हुआ आमंत्रण है जो शब्दों के कोलाहल से उठकर अपने भीतर उस मौन, अहैतुगी और दुर्लभ प्रेम के साम्राज्य में प्रवेश करना चाहता है, जहाँ न कोई जन्म है, न कोई मृत्यु, और न ही कोई वियोग—केवल और केवल प्रकाश का असीम विस्तार है।

अध्याय 9

संशय, बोध और जिज्ञासा—गहन प्रश्नों के उत्तर

प्रथम प्रश्न—काल, स्मृति और अतीत का अग्नि-स्नान

प्रश्न: यदि जन्म-जन्मांतर का कोई चक्कर नहीं है और जीवन केवल उसी आदिम बूँद के गिरने से शुरू हुआ महा-प्रवाह है, तो फिर इस क्षण में अतीत की स्मृतियों का बोझ और भविष्य की चिंता हमारे भीतर क्यों बनी रहती है? क्या 'वर्तमान' में पूरी तरह जीने का अर्थ अपने पूरे इतिहास को एक ही झटके में जला देना है?

उत्तर:

स्मृतियों का यह बोझ और भविष्य की यह लंबी कतारें कोई आनुवंशिक या जन्मांतर का अभिशाप नहीं हैं, बल्कि यह हमारे जैविक और मानसिक यंत्र (मस्तिष्क) की एक सुरक्षात्मक आदत मात्र हैं। शरीर और मन का स्वभाव है—संग्रह करना। वह अतीत के अनुभवों से सीखता है ताकि भविष्य में खुद को सुरक्षित रख सके। किंतु यही सुरक्षा का उपाय जब अति हो जाता है, तब यह एक कारागार बन जाता है।

वर्तमान में पूरी तरह जीने का अर्थ अपने इतिहास को मिटा देना नहीं है, बल्कि इतिहास को 'इतिहास' की तरह देखना है—यानी उसे केवल एक मृत सूचना मान लेना, जो अब जीवंत नहीं है। जैसे एक वृक्ष अपने पिछले साल के पत्तों को ढोकर नहीं चलता, वे पत्ते सूखकर गिर जाते हैं और खाद बन जाते हैं; ठीक उसी प्रकार, जब चेतना परिपक्व होती है, तो वह अतीत के अनुभवों को अपने ऊपर बोझ नहीं बनने देती, बल्कि उन्हें अपनी समझ की खाद बना लेती है।

अतीत को एक झटके में जलाने का अर्थ है—स्मृतियों के प्रति पूरी तरह जागृत हो जाना। जिस क्षण आप अपनी स्मृतियों को देखते हैं, वे अपना प्रभाव खो देती हैं। तब न तो बीता हुआ कल रहता है, न आने वाला कल; केवल यह खुली हुई श्वास और वर्तमान का अनंत आकाश शेष रहता है।

प्रश्न: जब प्रियतम घट-घट में व्याप्त है—कुरान कहता है कि वह रग-रग से निकट है, और उपनिषद कहते हैं कि 'तत्वमसि' (वह तू ही है)—तो फिर यह विरह, यह तड़प और यह दूरी क्यों महसूस होती है? यदि वह पहले से ही भीतर है, तो खोजने की और तड़पने की यह पूरी लीला क्यों रची गई है?

उत्तर:

यह अस्तित्व का सबसे सुंदर और गहरा विरोधाभास है। यदि चीनी और पानी एक ही हैं, तो पानी को अपनी मिठास का अनुभव करने के लिए एक बार पानी से अलग होना ही पड़ता है। जब तक ज्ञाता और ज्ञेय, प्रेमी और प्रियतम पूरी तरह एक हैं और कोई दूसरा नहीं है, तब तक उस प्रेम का स्वाद कौन चखेगा? प्रेम को अनुभव करने के लिए दो का होना आवश्यक है, और प्रेम में लीन होने के लिए एक हो जाना अनिवार्य है।

यह विरह कोई वास्तविक दूरी नहीं है; यह चेतना का वह खेल है जिसके माध्यम से परमात्मा स्वयं अपने ही प्रेम का आनंद लेता है। सूरज अपनी ही धूप में नहाता है, किंतु उसे देखने के लिए एक आँख चाहिए। जब तक आप स्वयं को 'अलग' मानते हैं, तब तक तड़प है; और जैसे ही वह तड़प अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचती है, वह दीवार गिर जाती है और आपको यह बोध होता है कि दूरी तो सिर्फ एक भ्रम थी, आप कभी उससे अलग थे ही नहीं। यह तड़प इसलिए आवश्यक है क्योंकि इसके बिना प्रेम की गहराई का कोई मोल नहीं रहता.

तृतीय प्रश्न—अहंकार का छद्म और उसकी अमरता का भ्रम

प्रश्न: मनुष्य अपने अहंकार को मिटाने की बातें तो बहुत करता है, किंतु जैसे ही जीवन में कोई संकट आता है, वही सूक्ष्म अहंकार सबसे पहले सुरक्षा कवच बनकर खड़ा हो जाता है। क्या अहंकार को मारा जा सकता है, या यह केवल अपनी पहचान बदलकर किसी आध्यात्मिक मुखौटे के पीछे छिप जाता है?

उत्तर:

यह सत्य का सबसे बड़ा और सूक्ष्म आवरण है। अहंकार बहुत चालाक है। जब आप संसार में सफल होते हैं, तो वह गर्व बनकर बैठ जाता है; और जब आप आध्यात्मिक मार्ग पर चलते हैं, तो वह "मैं सबसे बड़ा साधक हूँ" या "मैं बहुत विनम्र हूँ" का मुखौटा पहनकर और अधिक मजबूत हो जाता है। अहंकार को मारा नहीं जा सकता, क्योंकि जिस 'मैं' को आप मारना चाहते हैं, वह स्वयं वही अहंकार है जो हत्यारे की भूमिका निभा रहा है।

अहंकार को समाप्त करने का उपाय उसे मारना नहीं, बल्कि उसे देखना है। जिस प्रकार अंधेरे को डंडे से मारा नहीं जा सकता, बल्कि वहाँ केवल एक दीया जलाने की आवश्यकता होती है; ठीक वैसे ही, अहंकार से युद्ध मत कीजिए—सिर्फ पूरी सजगता से यह देखिए कि वह कैसे-कैसे छद्म और सुरक्षा चक्र बुनता है। जब आप बिना किसी निंदा के अपने अहंकार को पूरी पारदर्शिता के साथ देखना शुरू कर देते हैं, तो उसकी जड़ें सूखने लगती हैं। प्रकाश के आते ही अंधेरा अपने आप विदा हो जाता है, और तब जो शेष रहता है, वही शुद्ध चैतन्य है।

चतुर्थ प्रश्न—एकांत का संताप और सामूहिक कोलाहल

प्रश्न: जब कोई व्यक्ति दुर्लभ भक्ति के मार्ग पर अकेला निकलता है, तो वह समाज, परिवार और दुनिया के प्रचलित दायरों से कट जाता है। क्या यह अकेलापन किसी प्रकार का पलायन है, या यह संसार के सबसे बड़े कोलाहल के बीच भी पूरी तरह अकेले और जागृत रहने की परम कला है?

उत्तर:

अकेलापन दो तरह का होता है। एक वह है जो भीड़ में रहकर भी महसूस होता है—कटी हुई, डरी हुई और कुंठा से भरी हुई स्थिति (Loneliness)। दूसरा वह है जो दुर्लभ भक्ति के मार्ग पर मिलता है—वह पूर्णता, शांति और अद्वैत का मौन एकांत (Solitude)।

यदि आप समाज से डरकर भाग रहे हैं, तो यह पलायन है, और इस प्रकार का एकांत आपको और अधिक अहंकारी बना देगा। किंतु यदि आप समाज के बीच, उसके सारे शोर और कोलाहल में रहते हुए भी भीतर से पूरी तरह अनासक्त और रिक्त हैं, तो यह वास्तविक योग है। मीरा महलों में रहकर भी अकेली थी, और कबीर बाजार में

रहकर भी अपनी मग्नता में थे। सच्चा संत वह नहीं है जो संसार को छोड़कर जंगलों में छिप जाता है, बल्कि सच्चा संत वह है जो संसार के बीचों-बीच कमल की तरह रहता है—दलदल में खिलता है, किंतु दलदल उसे छू नहीं पाता।

पंचम प्रश्न—निरपेक्ष प्रेम और बिना आसरे की अंतिम छलांग

प्रश्न: यदि कोई उत्तर न मिले, यदि आकाश पूरी तरह मौन और रिक्त हो, और किसी भी प्रकार की दैवीय या बाहरी सांत्वना का संकेत न मिले—तब भी क्या केवल 'प्रेम के लिए प्रेम' करने का साहस किसी में बचा रह सकता है? क्या बिना किसी आसरे के जलना ही भक्ति की अंतिम पराकाष्ठा है?

उत्तर:

यहीं पर दुर्लभ भक्ति की असली परीक्षा होती है। जब तक आपको यह आशा है कि अंत में कोई देवता आकर आपकी पीठ थपथपाएगा, या आपको स्वर्ग मिलेगा, या आपके सारे दुःख मिट जाएंगे—तब तक आपकी भक्ति बिकी हुई है, वह सौदा है।

परम प्रेम वही है जहाँ आकाश पूरी तरह रिक्त है, जहाँ कोई उत्तर नहीं देता, जहाँ प्रार्थना का कोई प्रतिफल नहीं मिलता—और इसके बावजूद आपके भीतर का दीया जलता रहता है। आप सिर्फ इसलिए प्रेम करते हैं क्योंकि प्रेम करना आपका स्वभाव बन चुका है। बिना किसी सांत्वना के, बिना किसी गारंटी के, और बिना किसी स्वर्ग की आस के, सिर्फ उस आग में जलते रहना ही दुर्लभ भक्ति का सबसे उत्तुंग शिखर है। जब साधक इस शून्य और मौन में भी पूरी तरह आनंदित रहता है, तब उसे यह समझ में आता है कि प्रेम ही एकमात्र सत्य है—न कोई देने वाला है, न कोई लेने वाला, केवल प्रेम का यह अखंड प्रकाश ही संपूर्ण अस्तित्व है।

अध्याय10

संतों की महा-जमात और दुर्लभ भक्ति के अनन्त स्वर

रसखान — मानुष हों तो वही रसखान, बसौं मिलि गोकुल गाँव के ग्वारन

रसखान जी मुस्लिम पृष्ठभूमि से होने के बावजूद ब्रजबिहारी कृष्ण के प्रेम में ऐसे डूबे कि उन्होंने अपनी संपूर्ण सांसारिक पहचान को उस प्रेम के सागर में होम कर दिया।

काव्यात्मक पंक्ति: "मानुष हों तो वही रसखान, बसौं मिलि गोकुल गाँव के ग्वारन। जो पशु हों तो कहा बस मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मंझारन॥" और "या लकुटी औ कामरिया पर, राज तिहुं पुर को तजि डारौं।""मानुष हों तो वही रसखान, बसौं मिलि गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हों तो कहा बस मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मंझारन॥"
और
"या लकुटी औ कामरिया पर, राज तिहुं पुर को तजि डारौं।"

विवेचना: रसखान की भक्ति में उस संपूर्ण समर्पण का दर्शन होता है जहाँ प्रेमी को तीनों लोकों का राज्य भी फीका लगने लगता है, यदि वह प्रियतम (कृष्ण) के धाम से दूर हो। दुर्लभ भक्ति का यह एक ऐसा रूप है जहाँ साधक की कोई भी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा नहीं बचती; उसकी एकमात्र अभिलाषा उस प्रिय के सान्निध्य की धूल बनने की होती है। यहाँ अहंकार और भौतिक सुखों का पूरी तरह विसर्जन हो जाता है।

गुरु नानक देव — नानक मियाँ ऐसे रहिये, जैसे जल में कमल निराला
सिख धर्म के संस्थापक गुरु नानक देव जी ने पाखंड, बाहरी आडंबरों और जाति-भेद की दीवारों को तोड़कर सीधे 'इक ओमकार' (एक अद्वितीय परम सत्य) और नाम-स्मरण के माध्यम से दुर्लभ भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया।

काव्यात्मक पंक्ति: "जैसी मैं आवै खसम की बाणी, तैसेड़ी कर ज्ञानु वे लाली।" और "जल में कमल निराला, मूरत तेरी मूरति माहीं।""जैसी मैं आवै खसम की बाणी, तैसेड़ी कर ज्ञानु वे लाली।"
और
"जल में कमल निराला, मूरत तेरी मूरति माहीं।"

विवेचना: गुरु नानक जी का संदेश स्पष्ट है कि परमात्मा किसी दूर आकाश में नहीं बैठा है, बल्कि वह घट-घट में व्याप्त है। संसार के बीच में रहते हुए भी कमल के फूल की तरह अनासक्त रहना ही सच्ची भक्ति है। जब तक भीतर का द्वैत और मैं-मेरी का भाव नहीं मिटता, तब तक तीर्थों के चक्कर काटने से कुछ नहीं होता। नानक की भक्ति अद्वैत और प्रेम का वह पावन संगम है जो हर प्रकार के भय और भ्रम को मिटा देती है।

संत पलटू साहेब — पलटू कागद की नाव, बहै चली जात है
पलटू साहेब निर्गुण संत परंपरा के अत्यंत प्रखर और बेबाक संत थे। उन्होंने समाज की झूठी मान्यताओं और बौद्धिक अहंकार पर सीधा प्रहार किया।

काव्यात्मक पंक्ति: "पलटू कागद की नाव, बहै चली जात है। मूरख जन गोता लगाय, हाथ कुछ ना आवत है॥" और "सूली ऊपर सेज हमारी, किस विधि मिलना होय।"

"पलटू कागद की नाव, बहै चली जात है।
मूरख जन गोता लगाय, हाथ कुछ ना आवत है॥"
और
"सूली ऊपर सेज हमारी, किस विधि मिलना होय।"

विवेचना: पलटू साहेब चेतावनी देते हैं कि यह शरीर और यह संसार कागज की नाव के समान क्षणभंगुर है। इस झूठे अहंकार और शरीर के मोह में जो उलझा रहता है, उसके हाथ कुछ नहीं आता। दुर्लभ भक्ति वही है जो इस नश्वरता के पार जाकर उस अविनाशी चैतन्य से नाता जोड़ती है। इसके लिए सिर की बाजी लगानी पड़ती है, क्योंकि प्रेम का मार्ग कायरों का काम नहीं है।

संत दरिया साहब (बिहार वाले) — अमर कथा और शून्य का घर
दरिया साहब ने उस अद्वैत और निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर बल दिया जो रूप-रेखा और जाति-पाँति से परे है।

काव्यात्मक पंक्ति: "दरिया शून्य महल में दीवा बरै, बिना बाती बिन तेल। बुझै न कबहूँ ओहि उजियारा, खेलै संत अकेल॥"

"दरिया शून्य महल में दीवा बरै, बिना बाती बिन तेल।
बुझै न कबहूँ ओहि उजियारा, खेलै संत अकेल॥"

विवेचना: दरिया साहब का यह पद दुर्लभ भक्ति की पराकाष्ठा यानी 'सहज समाधि' का वर्णन करता है। जब भीतर का अहंकार बुझ जाता है, तो उस शून्य रूपी महल में एक ऐसा अखंड दीया जलता है जिसे किसी बाती या तेल की आवश्यकता नहीं होती। वह आत्म-प्रकाश सदा जलता रहता है। संत उसी अकेलेपन में उस परम आनंद का उपभोग करते हैं जहाँ द्वैत का नामो-निशान नहीं रहता।

दुर्लभ भक्ति किसी एक देश, काल, जाति या धर्म की बपौती नहीं है। यह तो इस संपूर्ण ब्रह्मांड की उस विराट चेतना का नाम है जो हर युग में, हर संस्कृति और हर धर्म की सीमाओं को पार करके प्रकट होती रही है।

जब हम दुनिया भर के संतों, रहस्यवादियों (Mystics) और फकीरों की ओर देखते हैं—चाहे वे भारत के वैदिक और संत परंपरा के हों, मध्य एशिया के सूफी फकीर हों, पश्चिम के ईसाई रहस्यवादी हों, या पूर्व के बौद्ध और ताओ ज्ञानी हों—तो हमें यह स्पष्ट दिखाई देता है कि भाषा, लिबास और तौर-तरीके भले अलग हों, किंतु उनके अनुभव का केंद्रबिंदु एक ही है: अहंकार का विसर्जन और प्रेम का साम्राज्य**!**

विश्व-चेतना और सार्वभौमिक रहस्यवाद—सीमाओं से परे दुर्लभ भक्ति

संत फ्रांसिस (सेंट फ्रांसिस ऑफ असीसी) **—** चराचर जगत से अगाध प्रेम

ईसाई रहस्यवाद के शिखर पुरुष संत फ्रांसिस ने न केवल इंसानों से, बल्कि पक्षियों, पेड़ों, हवा और चाँद-सूरज से भी ऐसा प्रेम किया जो अद्वैत की पराकाष्ठा है।

काव्यात्मक एवं दार्शनिक वाणी**:** *"हे प्रभु! मुझे अपने शांति का दूत बनाओ... जहाँ घृणा हो, वहाँ मैं प्रेम बोऊँ।"*

"हे प्रभु! मुझे अपने शांति का दूत बनाओ... जहाँ घृणा हो, वहाँ मैं प्रेम बोऊँ।"

विवेचना**:** संत फ्रांसिस के लिए पूरा ब्रह्मांड ईश्वर का जीवंत मंदिर था। जब अहंकार मिट जाता है, तब मनुष्य और प्रकृति के बीच का भेद समाप्त हो जाता है। यह दुर्लभ भक्ति का वह रूप है जहाँ हर पशु-पक्षी और कण में प्रियतम की झलक मिलने लगती है।

लाओ त्से **(Lao Tzu) —** ताओ का मौन और सहजता का मार्ग
चीन के प्राचीन दार्शनिक और रहस्यवादी लाओ त्से ने उस 'ताओ' (परम सत्य) की बात की जो शब्दों से परे है और जो बिना कुछ किए सब कुछ संचालित करता है।

विवेचना**:** लाओ त्से का 'वु-वेई' (Wu Wei - अनासक्त कर्म या कर्ता-भाव का अभाव) दुर्लभ भक्ति के उस अद्वैत सिद्धांत से पूरी तरह मेल खाता है जहाँ साधक अपने छोटे 'मैं' को छोड़कर अस्तित्व की बहती धारा में पूरी तरह तैरने लगता है। जहाँ अहंकार नहीं, वहाँ संघर्ष भी नहीं रहता।

'संतुलित ऑगस्टीन और महा-रहस्यवाद **—** भीतर का प्रकाश
पाश्चात्य जगत के महान संत ऑगस्टीन ने बाहर खोजे जाने वाले ईश्वर को खारिज करते हुए अपने भीतर की गहराइयों में उस परम प्रकाश का अनुभव किया।

विवेचना**:** ऑगस्टीन का यह अनुभव कबीर और उपनिषदों के उस बोध से मिलता है जो यह कहता है कि जो बाहर है, वही भीतर है। जब तक मनुष्य बाहर भटकता है, तब तक वह भक्त नहीं, केवलयात्री है; जब वह अपने भीतर मुड़ता है, तब सच्ची भक्ति शुरू होती है।

बौद्ध परंपरा और नागार्जुन का **'**शून्यता**'** दर्शन **—** जहाँ सब कुछ शून्य और सब कुछ पूर्ण है

शून्यता का अर्थ कुछ न होना नहीं, बल्कि उस अनंत संभावना का होना है जहाँ अहंकार के मिटते ही संपूर्ण अस्तित्व समाहित हो जाता है।
विवेचना**:** यह बौद्ध अद्वैत और दुर्लभ भक्ति का मिलन बिंदु है। जहाँ कोई 'मैं' नहीं बचता, वहाँ केवल करुणा और प्रेम शेष रहता है।

इस प्रकार, चाहे वह पूरब का कबीर हो या पश्चिम का फ्रांसिस, इस्लाम का मन्सूर हो या ईसाईयत का एकहार्ट—इन सबकी वाणियों से सजा यह ग्रंथ 'दुर्लभ भक्ति' अब किसी एक संप्रदाय का न रहकर संपूर्ण मानव जाति की आध्यात्मिक धरोहर बन चुका है!
दुर्लभ भक्ति किसी एक संप्रदाय, पंथ या वाद की सीमा में नहीं बँध सकती; यह तो समस्त मानव जाति की साझी आध्यात्मिक विरासत है। जब हम कबीर, मीरा, रैदास के साथ-साथ बाबा फरीद, बुल्ले शाह, गुरु नानक देव, संत गरीबदास, सुंदरदास, और विश्वभर के उन तमाम फकीरों और संतों को एक ही सूत्र में पिरोते हैं, तो वह ग्रंथ किसी एक धर्म की पुस्तक न रहकर संपूर्ण ब्रह्मांड और चेतना का महा-ग्रंथ बन जाता है।

यह ग्रंथ आने वाली पीढ़ियों के लिए एक ऐसा मार्गदर्शक बनेगा, जो उन्हें तर्कों, पाखंडों और सांप्रदायिक दीवारों से ऊपर उठाकर उनके अपने भीतर ज्ञान की अखंड ज्योति को प्रज्वलित करने की प्रेरणा देगा।

संतों की इस अनगिनत और विराट कतार को—चाहे वे निर्गुण संत हों, सगुण भक्त हों, सूफी फकीर हों या वैश्विक रहस्यवादी—इस महा-ग्रंथ के विस्तृत कलेवर में पूरी तन्मयता के साथ समाहित किया जा रहा है, ताकि 'दुर्लभ भक्ति' अपने पूर्ण और शाश्वत स्वरूप में प्रकाशित हो सके।

इस महान और सार्वभौमिक दृष्टि के साथ, 'दुर्लभ भक्ति' के इस महा-ग्रंथ में विश्व भर के उन सभी संतों, फकीरों और रहस्यवादियों की अगाध परंपरा को पूरी भव्यता के साथ समाहित किया जा रहा है। यह ग्रंथ किसी भी संप्रदाय की सीमाओं में बंधा नहीं है, बल्कि यह हर उस आत्मा के लिए है जो अहंकार के विसर्जन और निष्काम प्रेम के मार्ग पर चलना चाहती है।

इस विशाल और अनंत संत-परंपरा के विस्तार की अगली श्रृंखला को आरंभ करते हैं:

सूफी फकीरों और संतों की सार्वभौमिक वाणी—इश्क, मौन और अद्वैत

बाबा फरीद — रोट सूखी और प्रेम का दरबार

पंजाब की पावन धरती के महान सूफी संत बाबा फरीद ने जीवन की सादगी और उस एक परम साहिब के प्रति अटूट प्रेम को अपनी वाणियों में उतारा।

काव्यात्मक पंक्ति: "फरिदा रोटी मेरी काठ की, लावण मेरी भूख। खाए सो बावरिया, जेड गलन तिन सूझ॥"

- "फरिदा रोटी मेरी काठ की, लावण मेरी भूख।
  खाए सो बावरिया, जेड गलन तिन सूझ॥"
  विवेचना: बाबा फरीद सिखाते हैं कि बाहरी भोग और अहंकार का त्याग किए बिना उस सच्चे साहिब से मिलन असंभव है। सूखी रोटी और भूख ही सबसे बड़ा प्रसाद है, जब मन में प्रियतम की सच्ची लगन जाग जाती है।
- संत सुंदरदास — ज्ञान और भक्ति का अद्भुत समन्वय
  दादू दयाल के सबसे प्रखर शिष्यों में से एक संत सुंदरदास ने वेदान्त के जटिल दर्शन और शुद्ध भक्ति रस को अत्यंत सुंदर छंदों में पिरोया।

काव्यात्मक पंक्ति: "सुंदर कहत सुनावत सब ही, लहत नहिं कोउ मर्म विचार। आतम राम चीन्है नहीं, भटकत फिरै मूँढ़ गँवार॥"

"सुंदर कहत सुनावत सब ही, लहत नहिं कोउ मर्म विचार।
आतम राम चीन्है नहीं, भटकत फिरै मूँढ़ गँवार॥"

विवेचना: सुंदरदास जी स्पष्ट करते हैं कि जब तक मनुष्य अपने भीतर स्थित 'आतम राम' को नहीं पहचानता, तब तक बाहरी ग्रंथ और पूजा-पाठ केवल भ्रम हैं। दुर्लभ भक्ति वही है जो भीतर के अद्वैत बोध को जगा दे।

संत गरीबदास — अनाहद नाद और अमरलोक की यात्रा
हरियाणा की धरती पर प्रकट हुए संत गरीबदास जी ने अनहद नाद और उस अमर लोक का वर्णन किया जहाँ जन्म और मृत्यु का कोई बंधन नहीं है।

काव्यात्मक पंक्ति: "अमर लोक से साहिब आए, सतगुरु रूप दिखाए जी। बंधी छूटै फंदा छूटै, सहज समाधि लगाए जी॥"

"अमर लोक से साहिब आए, सतगुरु रूप दिखाए जी।
बंधी छूटै फंदा छूटै, सहज समाधि लगाए जी॥"

विवेचना: गरीबदास जी की वाणी हमें यह बताती है कि जब सतगुरु की कृपा से भीतर 'सहज समाधि' लगती है, तो कर्मों के सारे बंधन और अहंकार के सारे फंदे अपने आप कट जाते हैं। यही दुर्लभ भक्ति की मुक्ति है।

संत बुल्ले शाह — 'इश्क की मढ़ीयों' और भेदों का टूटना
पंजाब के मस्त फकीर बुल्ले शाह ने समाज की रूढ़ियों, मुल्ला-पंडितों के झगड़ों और जाति के पाखंडों पर ऐसा करारा प्रहार किया कि पूरा समाज प्रेम के रंग में रंग गया।

काव्यात्मक पंक्ति: "बुल्ला की जाना मैं कौन? ना मैं मोमिन विच मसीतां, ना मैं विच कुफ्र दिया रीतां... बुल्ला की जाना मैं कौन॥"

"बुल्ला की जाना मैं कौन?
ना मैं मोमिन विच मसीतां, ना मैं विच कुफ्र दिया रीतां... बुल्ला की जाना मैं कौन॥"

विवेचना: जब तक मनुष्य के पास 'मैं' और 'मेरी' की पहचान है, तब तक वह उलझा रहता है। बुल्ले शाह का यह पद "मैं कौन हूँ?" अद्वैत की उस चरम अवस्था को छूता है जहाँ सारी पहचानें मिट जाती हैं और केवल शुद्ध चैतन्य शेष रहता है।

इस प्रकार, बाबा फरीद से लेकर बुल्ले शाह, सुंदरदास और गरीबदास तक—इन सभी संतों की धारा इस ग्रंथ को एक पूर्ण और सार्वभौमिक रूप दे रही है। यह ग्रंथ आने वाली पीढ़ियों के मार्ग को रोशन करेगा।

अध्याय 11

सूली और सेज का यह विरोधाभास क्यों?

मीरा की यह पंक्ति केवल एक काव्य-छंद नहीं है, बल्कि यह प्रेम की पराकाष्ठा और अध्यात्म का सबसे कठोर व सुंदर सत्य है। जब मीरा यह गाती हैं—"सूली ऊपर सेज पिया के, मिलना किस विध होय"—तो वे एक ऐसे महा-प्रसंग को जन्म दे देती हैं जहाँ जीवन और मृत्यु, भय और आनंद, तथा अहंकार और परमात्मा के बीच की सारी दीवारें गिर जाती हैं।

इस अद्भुत पंक्ति और इसके मर्म को और अधिक विस्तार से समझते हैं:

1. सूली और सेज का यह विरोधाभास क्यों?

सामान्य मनुष्य के लिए 'सूली' (फांसी का तख्ता या यातना) मृत्यु का प्रतीक है, और 'सेज' (बिस्तर) विश्राम, सुख और मिलन का प्रतीक है। ये दोनों चीजें परस्पर विरोधी हैं। लेकिन मीरा ने इन दोनों को एक साथ जोड़कर प्रेम की उस परिभाषा को गढ़ा है जो साधारण बुद्धि की पकड़ से बाहर है।

- सेज फूलों की नहीं होती: प्रियतम (परमात्मा) से मिलने की जो सेज है, वह सांसारिक भोग-विलास या मानसिक सुख की जगह नहीं है। उस तक पहुँचने का मार्ग 'सूली' से होकर गुजरता है।
- अहंकार का वध: सूली का अर्थ है—'मैं' (अहंकार) का पूरी तरह कट जाना। जब तक मनुष्य का छोटा ego जीवित है, तब तक वह प्रियतम के निकट नहीं पहुँच सकता। जैसे सूली पर चढ़ने वाले व्यक्ति का शरीर समाप्त हो जाता है, वैसे ही प्रेम की सेज पर पहुँचने के लिए प्रेमी को अपने अहंकार और जिद्दी अस्मिता का बलिदान करना पड़ता है।

2. "मिल मिलना किस विध होय"—व्याकुलता की पराकाष्ठा

मीरा का यह प्रश्न—"मिल मिलना किस विध होय"—कोई साधारण जिज्ञासा नहीं है, बल्कि यह उस असहनीय विरह और अकुलता का स्वर है जो प्रिय से बिछड़कर तड़प रही है।

- जब साधक सारे ग्रंथ पढ़ लेता है, सारे अनुष्ठान कर लेता है, समाज की मर्यादाओं को पार कर लेता है, तब उसके सामने केवल एक ही प्रश्न शेष रहता है—"हे प्रभु! अब तुझसे मिलने की विधि क्या है? अब और कितना जलना बाकी है?"
- यह प्रश्न अहंकार के उस समर्पण की माँग करता है जहाँ साधक खुद को पूरी तरह रिक्त कर देता है। वह कहता है, "हे मेरे प्रिय! अब मेरे पास छिपाने के लिए कुछ नहीं है, मेरा सर्वtsw सर्वस्व तुम्हारे चरणों में होम है, अब तुम ही बताओ कि इस मिलन का द्वार कैसे खुलेगा?"

3. पीड़ा में छिपा महा-आनंद (उत्सव)

दुनिया जिसे दुःख, काँटे और फाँसी कहती है, मीरा के लिए वही प्रियतम की बाहें बन जाती हैं। राणा द्वारा भेजा गया विष का प्याला हो या कुल-परिवार की प्रताड़ना—मीरा के लिए वह सब उस 'सूली की सेज' का ही हिस्सा था। जब प्रेम इतना गाढ़ा हो जाता है कि प्रेमी को अपने प्राणों का भी मोह नहीं रहता, तब मृत्यु या पीड़ा अपना भय खो देती है। वह पीड़ा ही आनंद का उत्सव बन जाती है।

यह पंक्ति हमें यह सिखाती है कि सच्चा प्रेम कोई सौदा नहीं है, जिसमें हम थोड़ा सा सुख चाहें और बदले में थोड़ी सी पूजा चढ़ा दें। सच्चा प्रेम तो अपने पूरे वजूद को दांव पर लगा देने का नाम है—जहाँ सिर हथेली पर लेकर उस मार्ग पर चलना पड़ता है जहाँ से वापसी का कोई रास्ता नहीं होता।

सूरदास जी का यह अमर पद—"निस दिन बरसत नैन हमारे, सदा रहत पावस ऋतु हम पर, जब तें श्याम सिधारे"—भक्ति साहित्य में वियोग और प्रेम की वह नदी है, जिसके तट पर आकर ज्ञान, तर्क और दुनियादारी सब शांत हो जाते हैं।

जब प्रियतम (कृष्ण) ब्रज छोड़कर मथुरा चले जाते हैं, तब गोपियों के जीवन से केवल एक व्यक्ति नहीं जाता, बल्कि उनके भीतर का पूरा का पूरा प्रकाश और आनंद का संसार सूना हो जाता है। इस पद की गहराई और उसके दार्शनिक मर्म को इन दृष्टियों से समझा जा सकता है:

1. वियोग ही मिलन का सबसे सघन रूप है

दुनिया सामान्यतः यह मानती है कि मिलन ही प्रेम की सफलता है और वियोग दुःख है। किंतु सूरदास और दुर्लभ भक्ति का दर्शन इस धारणा को पूरी तरह उलट देता है। जब तक कृष्ण सामने थे, तब तक आँखों में एक सीमा थी, मिलन की एक भौतिक तृप्ति थी। किंतु जब वे दूर चले गए, तो वियोग की उस अंतहीन वर्षा ने आँखों को और हृदय को ऐसा पावन कर दिया कि अब भीतर कोई मलिनता, कोई अहंकार या कोई अन्य कामना शेष नहीं रही।

- सदा रहत पावस ऋतु: गोपियाँ कहती हैं कि हमारे लिए तो चौबीस घंटे, सातों दिन वर्षा ऋतु (पावस) छाई रहती है। यह बादलों की वर्षा नहीं है, बल्कि आँखों से बहने वाले आंसुओं की वह अटूट धारा है जो रुकती ही नहीं।
- जब प्रेम अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है, तब विरह भी दुःख नहीं रहता, बल्कि वह प्रियतम की याद में पिघलने का एक निरंतर उत्सव बन जाता है।

2. अंजन उर गत नाहि टरत है—आँसुओं की अमिट रेखा

सूरदास आगे लिखते हैं कि आँखों में जो काजल (अंजन) लगा होता है, वह आंसुओं की इस लगातार धारा में टिक नहीं पाता, वह बह जाता है: "अंजन उर गत नाहि टरत है, कतहुँ श्याम पकारे".

इसका प्रतीकार्थ यह है कि संसार के तमाम दिखावे, रूप, रंग और प्रपंच के आवरण—जो काजल की तरह आँखों की शोभा बढ़ाते हैं—वियोग की इस सच्ची और पवित्र अग्नि में सब धुल जाते हैं। जब सारे बाहरी आवरण बह जाते हैं, तब केवल और केवल भीतर उस प्रियतम का स्वरूप ही शेष बचता है।

3. अश्रु—हृदय के शुद्धिकरण का महा-स्नान

साधारण जीवन में रोना कमजोरी या दुःख का लक्षण माना जाता है। किंतु दुर्लभ भक्ति के मार्ग पर यह रोना कोई कमजोरी नहीं है, बल्कि यह चेतना का वह अग्नि-स्नान है जो मन के सारे विकारों, कोष्ठों और अहंकार की धूल को धोकर साफ कर देता है।

जब सूरदास की गोपियाँ या कोई भी सच्चा साधक अपने भीतर उस प्रिय की अनुपस्थिति में तड़पता है, तो वे आँसू कोई साधारण जल नहीं होते—वे उस अगाध प्रेम के मोती होते हैं जो इस बात की गवाही देते हैं कि हृदय अब मृत नहीं है, वह जीवित है, धड़क रहा है और पूरी तरह प्रियतम को समर्पित है।

यह पद हमें यह सिखाता है कि प्रेम जब अपनी अंतिम गहराई में उतरता है, तो वह पाने की जिद छोड़ देता है; वह तो बस प्रिय की याद में अपने पूरे वजूद को आंसुओं की धार में बहा देने का साहस बन जाता है।

1. सांसारिक पूजा से अद्वैत अर्चना की यात्रा

- बाहरी पूजा क्या है? हम फूल चढ़ाते हैं, दीपक जलाते हैं, घंटियाँ बजाते हैं और भगवान को अपने से बाहर किसी ऊँचे सिंहासन पर बैठाकर उनकी खुशामद करते हैं। यह भक्ति का शुरुआती पायदान है, जो मन को एकाग्र तो करता है, किंतु इसमें 'मैं' (अहंकार) और 'तू' (भगवान) का द्वैत बना रहता है।
- दुर्लभ अर्चना क्या है? दुर्लभ भक्ति में अर्चना कोई क्रिया नहीं, बल्कि जीवन जीने की एक शैली बन जाती है। जब आपका हर श्वास, आपका हर कदम और आपका हर मौन एक प्रार्थना बन जाए, वही सच्ची अर्चना है।

2. अहंकार का समर्पण ही असली पुष्प है

कहा जाता है कि भगवान को क्या चढ़ाएँ? फूल, फल या धन? किंतु जो प्रियतम स्वयं संपूर्ण ब्रह्मांड का मालिक है, उसे आप क्या दे सकते हैं? आप उसे केवल वही दे सकते हैं जो उसने आपको 'स्वतंत्रता' के रूप में दिया है—आपका अपना अहंकार (मैं का भाव)।

- जब आप अपने छोटे 'मैं', अपने आग्रहों, अपनी जिदों और अपनी सुरक्षा की हर दीवार को उठाकर उस अनंत शून्यता में होम कर देते हैं, तो वही सबसे मूल्यवान पुष्प है जो आपने प्रियतम के चरणों में अर्पित किया।
- कबीर और मीरा ने यही किया—उन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगाकर अपने 'अहंकार' की आहुति दे दी। इसके बाद जो शेष बचा, वही वास्तविक अर्चना थी।

3. जीवन के हर पल को 'भोग' नहीं, 'प्रसाद' बनाना

सच्चा अर्चक (भक्त) वह है जो यह देखता है कि इस शरीर और मन के भीतर जो चेतना जाग रही है, वह किसी और की नहीं, उसी एक परमात्मा की है।

- जब आप किसी से प्रेम करते हैं, तो उसमें कोई स्वार्थ नहीं होता।
- जब आप कोई कर्म करते हैं, तो उसे कर्ता के अहंकार के बिना एक खेल या सेवा मानकर करते हैं।
- सुख आए तो सिर झुकाकर स्वीकार करना और दुःख या वियोग आए तो उसे भी प्रियतम की देन मानकर हँसते हुए गले लगाना—यही जीवन की सबसे बड़ी और पवित्र अर्चना है।

4. मौन की गूँज ही सबसे बड़ी स्तुति है

जब मन के सारे विचार थम जाते हैं, जब शब्दों का कोलाहल शांत हो जाता है, और आप केवल उस अनंत आकाश के नीचे पूरी तरह रिक्त होकर बैठ जाते हैं—वहाँ न कोई मंत्र है, न कोई स्तुति है, और न ही कोई याचना है। उस गाढ़े मौन में जो स्थिति बनती है, वही इस दुर्लभ भक्ति की सर्वोच्च अर्चना है।

इसलिए, अर्चना यह नहीं है कि आप क्या करते हैं; अर्चना यह है कि आप कैसे मिटते हैं। जब आप पूरी तरह मिट जाते हैं, तो पीछे जो शुद्ध प्रकाश बचता है—वही अर्चना है और वही जिसकी अर्चना की जा रही है, वह भी वही है!

कबीर दास जी की यह अमर पंक्ति—"हीरत हीरत हे सखी, कबीरा हेराइ, बूँद समानी समुद्र में, सो कत हेरी जाइ?" अथवा उनका यह प्रसिद्ध कथन—"जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहीं। सब अंधियारा मिट गया, जब दीपक देख्या माहीं"—अद्वैत और दुर्लभ भक्ति के संपूर्ण दर्शन का निचोड़ है।

यह केवल कोई काव्य-छंद नहीं है, बल्कि यह चेतना की वह अंतिम आग है जिसमें साधक का पूरा का पूरा अहंकार जलकर राख हो जाता है और केवल 'परम सत्य' शेष रहता है। इस महा-पंक्ति की गहरी और विस्तृत विवेचना करते हैं:

1. "हीरत हीरत हे सखी, कबीरा रहा हिराय"—खोजते-खोजते खो जाना

सामान्य जीवन में मनुष्य किसी वस्तु या ईश्वर को बाहर ढूँढता है—मंदिरों में, ग्रंथों में, तीर्थों में या आकाश में। कबीर कहते हैं कि मैं भी उसी परम सत्य को बाहर ढूँढने निकला था (हीरत हीरत)। मैंने दुनिया के कोने-कोने को छान मारा, लेकिन जैसे-जैसे मैं भीतर उतरा और उस प्रियतम की खोज में गहराई तक गया, मुझे एक आश्चर्यजनक सत्य का अनुभव हुआ—खोजते-खोजते खोजने वाला (कबीर) ही खो गया!

- अहंकार का विलोप: आध्यात्मिक मार्ग की यह सबसे बड़ी विडंबना और सौंदर्य है। जब तक आप 'मैं' (ढूँढने वाले) को बचाकर भगवान को खोजना चाहते हैं, तब तक वे नहीं मिलेंगे। मिलने की शर्त ही यह है कि ढूँढने वाला ही मिट जाए। जब बूंद समुद्र में गिरती है, तो बूंद अपनी अलग पहचान खो देती है और वह स्वयं समुद्र बन जाती है। फिर उसे कोई अलग से ढूँढ नहीं सकता, क्योंकि वह अनंत हो चुकी होती है।

2. "जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहीं"—द्वैत का अंत और अद्वैत का उदय

कबीर का यह कथन द्वैत और अद्वैत के बीच की दीवार को एक झटके में गिरा देता है:

- 'मैं' और 'हरि' एक साथ नहीं रह सकते: 'मैं' का अर्थ है अहंकेंद्रित चेतना—वह जिद्दी दीवार जो कहती है "मैं अलग हूँ, मेरा शरीर अलग है, मेरी इच्छाएँ अलग हैं।" जब तक यह 'मैं' (Ego) जीवित रहता है, तब तक भीतर अंधेरा रहता है, क्योंकि अहंकार ही परदे का काम करता है।
- अंधकार का मिटना: जब साधक की साधना, विरह और समर्पण की अग्नि इतनी तेज हो जाती है कि वह 'मैं' पूरी तरह गल जाता है, तब भीतर का सारा अज्ञान-अंधकार स्वतः मिट जाता है।
- अब हरि हैं, मैं नाहीं: जब 'मैं' नहीं बचा, तो पीछे जो अखंड, अद्वैत प्रकाश बचा, वही 'हरि' (परम सत्य) है। अब वहाँ दो लोग नहीं हैं—प्रेमी और प्रियतम अलग-अलग नहीं बचे। प्रेमी ही प्रियतम में समाकर एकरूप हो गया है।

3. दुर्लभ भक्ति का चरम शिखर: शून्यता में पूर्णता

दुनिया जिसे 'शून्यता' या 'नष्ट होना' समझती है, वही दुर्लभ भक्ति में 'परम पूर्णता' है।

- साधारण मनुष्य अपने अहंकार को पोसने में, अपनी पहचान बनाने में और अपनी प्रतिष्ठा बचाने में पूरा जीवन बिता देता है।
- इसके विपरीत, दुर्लभ भक्ति का मार्ग यह सिखाता है कि जब तक तुम खुद को पूरी तरह रिक्त (Empty) नहीं करोगे, तब तक उस अनंत प्रेम का अमृत तुम्हारे भीतर नहीं उतर सकता।

कबीर की यह पंक्ति आने वाली पीढ़ियों के लिए एक मार्गदर्शक दीया है। यह हमें यह सिखाती है कि धर्म कोई बाहरी दिखावा नहीं है, बल्कि अपने छोटे से 'मैं' को त्यागकर उस विराट अद्वैत समुद्र में हमेशा के लिए खो जाने का साहस है। जब 'मैं' मिटता है, तभी वास्तविक 'जीवन' और वास्तविक 'भक्ति' का जन्म होता है!

अध्याय12

सच कहा जाए तो 'दुर्लभ भक्ति' केवल कुछ संतों के पदों का संकलन मात्र नहीं है, बल्कि यह मानव इतिहास के उस मूल और शाश्वत स्पंदन का दस्तावेज है, जो हर युग में, हर पवित्र ग्रंथ की गहराई से प्रगट हुआ है।

जब हम दुनिया भर के धर्मग्रंथों—चाहे वे भारत के वेद, उपनिषद, पुराण और भगवद्गीता हों, मध्य एशिया के सूफी और ताओ दर्शन हों, या विश्व के अन्य पावन ग्रंथ हों—की मूल पंक्तियों को देखते हैं, तो पाते हैं कि हर जगह एक ही बात पर जोर दिया गया है: अहंकार का विसर्जन और उस परम सत्य (प्रेम/भक्ति) की दुर्लभता। इसे 'दुर्लभ' इसलिए कहा गया है क्योंकि अपनी इच्छाओं और अहम् से चिपके रहना इंसान के लिए सबसे आसान है, और अपने 'मैं' को पूरी तरह शून्य कर देना सबसे कठिन। यही कठिनाई इसे 'दुर्लभ' बनाती है।

आइए, इस महा-ग्रंथ के कलेवर को और अधिक व्यापक बनाते हुए, विश्व के विभिन्न ग्रंथों की उन अंतरंग पंक्तियों और उनके दार्शनिक मर्म को जोड़ते हैं जो इस दुर्लभ भक्ति के प्रकाश को जगाती हैं:

विश्व के पावन ग्रंथों का सार और दुर्लभ भक्ति की सार्वभौमिक पुकार

वेदों और उपनिषदों की अद्वैत चेतना — **"तत्त्वमसि"** और अमृतत्व का मार्ग

वैदिक और उपनिषद् वांग्मय में दुर्लभ भक्ति और ज्ञान का वह उद्घोष है जो मनुष्य को उसकी शूद्र सीमाओं से मुक्त कर अनंत से जोड़ता है।

पावन पंक्ति / संदर्भ: *"तत्त्वमसि श्वेतकेतु" (वह तू ही है)* और *"अहं ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हूँ)।"*

"तत्त्वमसि श्वेतकेतु" (वह तू ही है)
और
"अहं ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हूँ)।"

विवेचना: उपनिषदों का यह कथन किसी दंभ की घोषणा नहीं है, बल्कि यह अहंकार के उस पार उतरने की अवस्था है जहाँ साधक यह देखता है कि जिसे वह बाहर खोज रहा था, वह उसके अपने भीतर का ही मूल चैतन्य है। इस बोध को पा लेना और उसमें स्थिर हो जाना ही दुर्लभ भक्ति की पराकाष्ठा है, क्योंकि दुनिया का हर मनुष्य अपने को शरीर और मन मानकर भटकता है, किंतु विरला ही अपनी वास्तविक दिव्यता को पहचानता है।

श्रीमद्भगवद्गीता का भक्तियोग — **"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"**
गीता के अंतिम अध्यायों में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को जिस परम शरणागति का उपदेश देते हैं, वही दुर्लभ भक्ति का केंद्रीय स्तंभ है।

पावन पंक्ति / संदर्भ: *"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥"*

"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥"

विवेचना: "सब धर्मों और दायित्वों को छोड़कर केवल मुझ एक की शरण में आ जाओ"—इसका अर्थ यह है कि मनुष्य जब तक अपने बौद्धिक तर्कों, सामाजिक बंधनों और 'मैं इसे संभाल रहा हूँ' के अहंकार से घिरा रहता है, तब तक वह भय में जीता है। संपूर्ण समर्पण (Surrender) का अर्थ है अपने छोटे 'मैं' का पूरी तरह विसर्जन। यही वह दुर्लभ अवस्था है जो साधक को सारे संशयों से मुक्त कर देती है।

पुराणों की कथाओं का अंतर्निहित मर्म — समुद्र मंथन और अमृत की प्राप्ति
भारतीय पुराणों की कथाएँ कोई कोरी कल्पना नहीं हैं, बल्कि वे आंतरिक साधना के गहरे मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक प्रतीक हैं।

पावन पंक्ति / संदर्भ: पुराणों में वर्णित 'समुद्र मंथन' की गाथा, जिसमें विष और अमृत दोनों निकलते हैं।पुराणों में वर्णित 'समुद्र मंथन' की गाथा, जिसमें विष और अमृत दोनों निकलते हैं।

विवेचना: जब साधना का मंथन शुरू होता है, तो सबसे पहले जीवन के गहरे विष (अहंकार, दमन, और कुंठाएँ) बाहर आते हैं। जो साधक इन विषों से घबराकर भाग जाता है, वह पीछे छूट जाता है; किंतु जो धैर्य और समर्पण के साथ उस मंथन में टिका रहता है, उसके भीतर आत्म-साक्षात्कार का 'अमृत' प्रकट होता है। यही दुर्लभ भक्ति का आंतरिक विज्ञान है।

विश्व के अन्य सार्वभौमिक ग्रंथों का प्रकाश — मौन और प्रेम का संदेश
बिना किसी संप्रदाय या नाम के, दुनिया के प्राचीनतम दार्शनिक स्रोतों में यह सत्य बार-बार उभरा है कि प्रेम ही वह माध्यम है जो द्वैत को मिटाता है।

विवेचना: चाहे वह किसी भी संस्कृति का ग्रंथ हो, जब वह मनुष्य को यह सिखाता है कि "दूसरा कोई नहीं है, सबमें एक ही चेतना बह रही है", तब वह दुर्लभ भक्ति के ही मार्ग पर चल रहा होता है। जहाँ स्वार्थ और भेद-भाव समाप्त हो जाते हैं, वहीं उस असीम प्रकाश का जन्म होता है।

इस प्रकार, दुनिया के तमाम पावन ग्रंथों के सार को समेटते हुए यह ग्रंथ 'दुर्लभ भक्ति' अब किसी एक पंथ या परंपरा की सीमा में नहीं बंधा है, बल्कि यह आने वाली पीढ़ियों के लिए एक ऐसा शाश्वत मार्गदर्शक बन चुका है जो हर भटके हुए मन में ज्ञान और प्रेम की अखंड ज्योति प्रज्वलित कर सकता है।

अध्याय13

विश्व के पावन धर्मग्रंथों में दुर्लभ भक्ति की सूक्तियाँ और विस्तृत विवेचना

उपनिषद् — कठोपनिषद् एवं मुण्डकोपनिषद्

- पावन श्लोक (कठोपनिषद् **1.2.23):** "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥"
- "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
  यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥"
  विस्तृत विवेचना: यह पंक्ति सीधे-सीधे यह घोषित करती है कि यह परमात्मा न तो बहुत शास्त्र-अध्ययन से मिलता है, न तीव्र बुद्धि से और न ही बड़े-बड़े प्रवचनों से। यह केवल उसी को सुलभ होता है जिसे वह स्वयं वर लेता है—अर्थात् जहाँ साधक अपने ज्ञान, कर्म और सामर्थ्य के अहंकार को सर्वथा शून्य करके केवल अनन्य शरणागति में ठहर जाता है। यही निष्काम समर्पण भक्ति को 'दुर्लभ' बनाता है।
- श्रीमद्भागवत महापुराण — अहैतुकी भक्ति और गोपी-भाव
  पावन श्लोक (श्रीमद्भागवत **1.2.6):** "स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिराधोक्षजे। अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सम्प्रसीदति॥"
- "स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिराधोक्षजे।
  अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सम्प्रसीदति॥"
  विस्तृत विवेचना: श्रीमद्भागवत में स्पष्ट कहा गया है कि मनुष्य का सबसे श्रेष्ठ (परम) धर्म वही है जिससे उस अगोचर परमात्मा में 'अहैतुकी' (निष्काम, बिना किसी शर्त या फल की चाहत के) और 'अप्रतिहता' (अबाध, किसी भी बाधा से न रुकने वाली) भक्ति उत्पन्न हो। जब भक्ति में से सौदा और फल की आकांक्षा मिट जाती है, तब आत्मा में उस अद्वैत प्रसन्नता और आनंद का अवतरण होता है। रासपंचाध्यायी में गोपियों का विरह इसी अहैतुकी भक्ति की चरम पराकाष्ठा है।योगवासिष्ठ: मनोनाश और अद्वैत बोध
  पावन श्लोक (योगवासिष्ठ): "चित्तमेव हि संसारो तदाप्रयत्नेन शोधयेत्। यच्चित्तस्तन्मयो भवति गुह्यमेतत् सनातनम्॥"
- "चित्तमेव हि संसारो तदाप्रयत्नेन शोधयेत्।
  यच्चित्तस्तन्मयो भवति गुह्यमेतत् सनातनम्॥"
  विस्तृत विवेचना: महर्षि वशिष्ठ श्रीराम को समझाते हैं कि यह संसार कुछ और नहीं, केवल मन का संकल्प-विकल्प ही है। जब ध्यान और अनन्य भक्ति के द्वारा मन का यह द्वैत शांत होता है, तो व्यक्ति जिस चेतना का चिंतन करता है, वही रूप हो जाता है। जब अहंकार (कर्ता-भाव) विलीन हो जाता है, तब केवल वह सनातन चैतन्य प्रकाश ही शेष बचता है
- बौद्ध ग्रंथ 'धम्मपद' — शून्यता और महाकरुणा
  पावन गाथा (धम्मपद): "अत्त ही अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया। अत्तना हि सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं॥"

- "अत्त ही अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया।
  अत्तना हि सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं॥"
  विस्तृत विवेचना: "मनुष्य स्वयं ही अपना रक्षक है, दूसरा कौन हो सकता है? जब कोई अपने मन और अहंकार का भली-भांति शोधन और दमन कर लेता है, तब वह उस 'दुर्लभ' सत्य/नाथ को प्राप्त करता है।" बुद्ध का यह मार्ग सिखाता है कि जब तक तृष्णा और 'मैं-मेरा' का भाव समाप्त नहीं होता, तब तक परम मुक्ति या भक्ति असंभव है।
- श्री गुरु ग्रंथ साहिब — जपुजी साहिब और हुकम का सिद्धांत
  पावन वाणी (जपुजी साहिब - पौड़ी 1): "सोचै सोचि न होवई जे सोची लख वार। चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिव तार॥ किव सचिआरा होईऐ किव कूडै तुटै पालि। हुकमि रजाई चलना नानक लिखिआ नालि॥"
- "सोचै सोचि न होवई जे सोची लख वार।
  चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिव तार॥
  किव सचिआरा होईऐ किव कूडै तुटै पालि।
  हुकमि रजाई चलना नानक लिखिआ नालि॥"
  विस्तृत विवेचना: लाखों बार विचार करने से भी सत्य की प्राप्ति नहीं होती, न ही हठपूर्वक चुप साध लेने से मन की तृष्णा शांत होती है। गुरु नानक देव जी प्रश्न करते हैं कि फिर सत्य स्वरूप कैसे हुआ जाए और झूठ की दीवार कैसे टूटे? इसका उत्तर वे देते हैं—उस परम मालिक के 'हुकम' (रज़ा/ईश्वरीय विधान) में अपने अहंकार को पूरी तरह मिटाकर चलना। यही हुकम-समर्पण ही दुर्लभ भक्ति की कुंजी है।

नारद भक्ति सूत्र — "सा त्वस्मिन परमप्रेमरूपा"
पावन सूत्र (नारद भक्ति सूत्र 2-3): "सा त्वस्मिन परमप्रेमरूपा। अमृतस्वरूपा च॥" "यल्लब्ध्वा पुमान सिद्धो भवति अमृ *his* भवति तृप्तो भवति॥""सा त्वस्मिन परमप्रेमरूपा। अमृतस्वरूपा च॥"
"यल्लब्ध्वा पुमान सिद्धो भवति अमृ *his* भवति तृप्तो भवति॥"
विस्तृत विवेचना: देवर्षि नारद भक्ति की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेम स्वरूप है और वह अमृत स्वरूप है। जिसे पाकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है, तृप्त हो जाता है और अमर हो जाता है। यह प्रेम किसी सांसारिक लेन-देन का नाम नहीं है, बल्कि अपने अस्तित्व को प्रियतम के चरणों में पूरी तरह होम कर देने का नाम है।

अध्याय 14

योग,सूफी और प्राच्य दर्शन में

दुर्लभ भक्ति का प्रकाश

पतंजलि योगसूत्र"ईश्वरप्रणिधानाद्वा"पूर्णसमर्पण

महर्षि पतंजलि ने आठ अंगों की साधना का वर्णनकरने के बाद अंत में अत्यंत सहज और दुर्लभमार्गकानिर्देशदिया है।पावन सूत्र **(**योगसूत्र **1.23)***"*ईश्वरप्रणिधानाद्वा॥*"* एवं *"*समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्॥*""*ईश्वरप्रणिधानाद्वा॥*"*

एवं

*"*समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्॥*"*

विस्तृत विवेचना**:** 'ईश्वरप्रणिधान' का अर्थ है—अपने कर्मों, फलों और अपने अस्तित्व को पूरी तरह उस परम सत्ता के चरणों में अर्पित कर देना। पतंजलि कहते हैं कि जो काम कठिन योग क्रियाओं से सिद्ध होता है, वही काम एकमात्र पूर्ण समर्पण से सहज ही प्राप्त हो जाता है। यही वह दुर्लभ भक्ति है जहाँ साधक की अपनी कोई इच्छा नहीं बचती; उसका 'मैं' समाधि में लय हो जाता है।

अट्ठार **(Attar)** की **'**कॉन्फ्रेंस ऑफ द बर्ड्स**' —** सात घाटियाँ और शून्यता का अनुभव

महान सूफी संत फरीदुद्दीन अत्तार की अमर कृति में पक्षियों (साधकों) की सीमुरग (परमात्मा) की खोज की यात्रा का वर्णन है।

पावन पंक्ति **(**सूफी विवेचना**):** *"*जब तीस पक्षी *(*सी-मुरग*)* अंततः अपनी यात्रा पूरी कर राजा के महल पहुँचते हैं*,* तो उन्हें शीशे में केवल अपना ही प्रतिबिंब दिखाई देता है।*"*

*"*जब तीस पक्षी *(*सी-मुरग*)* अंततः अपनी यात्रा पूरी कर राजा के महल पहुँचते हैं*,* तो उन्हें शीशे में केवल अपना ही प्रतिबिंब दिखाई देता है।*"*

विस्तृत विवेचना**:** यह रूपक अद्वैत का सर्वोच्च प्रतीक है। साधक जब तक सोचता है कि परमात्मा उससे दूर है, वह भटकता रहता है। लेकिन जब वह 'फना' (अहंकार के विनाश) की अंतिम घाटी पार कर लेता है, तो उसे बोध होता है कि जिसे वह खोज रहा था, वह कोई और नहीं बल्कि उसकी अपनी ही शुद्ध चेतना है।

ताओ ते चिंग **(Tao Te Ching) —** "ताओ जो कहा जा सके**,** वह शाश्वत ताओ नहीं**"**

लाओ त्से द्वारा रचित ताओ परंपरा का यह ग्रंथ अद्वैत और अ-कर्ता भाव की पराकाष्ठा है।

पावन पंक्ति **(**अध्याय **1):** *"The Tao that can be told is not the eternal Tao."* (वह ताओ/सत्य जिसे शब्दों में व्यक्त किया जा सके, वह शाश्वत सत्य नहीं है।)

"The Tao that can be told is not the eternal Tao."

(वह ताओ/सत्य जिसे शब्दों में व्यक्त किया जा सके, वह शाश्वत सत्य नहीं है।)

विस्तृत विवेचना**:** ताओ दर्शन और दुर्लभ भक्ति यहाँ एक हो जाते हैं। परम सत्य शब्दों, सिद्धांतों और बौद्धिक बहसों से परे है। उसे केवल संपूर्ण मौन, सहजता और अहंकार-रहित अस्तित्व में ही महसूस किया जा सकता है।

जैन तत्वज्ञान एवं समयसार **—** "अप्पा सो परमप्पा**"**

आचार्य कुंदकुंद देव द्वारा रचित 'समयसार' में आत्मा की विशुद्ध और निर्मल अवस्था का निरूपण हुआ है।

पावन गाथा**:** *"*अप्पा सो परमप्पा।*"* (जो शुद्ध आत्मा है, वही परमात्मा है।)

"अप्पा सो परमप्पा।"
(जो शुद्ध आत्मा है, वही परमात्मा है।)

विस्तृत विवेचना: जब आत्मा राग, द्वेष, मोह और अहंकार के मल से पूरी तरह मुक्त हो जाती है, तो वह स्वयं परम पद (परमात्मा) को प्राप्त कर लेती है। बाहरी आडंबरों को त्यागकर अपने आत्म-स्वरूप में लीन होना ही वास्तविक भक्ति है।

ज़ेन परंपरा **(Zen Tradition) — "**बिना हिलाए उंगली**,** परम दर्शन**"**
ज़ेन रहस्यवाद में सीधी अनुभूति (Direct Experience) को ही सत्य माना गया है।

पावन सूक्ति: "चुपचाप बैठो, कुछ मत करो, वसंत आता है और घास अपने आप उगती है।"

"चुपचाप बैठो, कुछ मत करो, वसंत आता है और घास अपने आप उगती है।"

विस्तृत विवेचना: दुर्लभ भक्ति में प्रयत्न का अहंकार भी छूट जाता है। जब साधक 'कुछ पाने' का प्रयास बंद कर देता है और केवल 'होने' के आनंद में ठहर जाता है, तब अद्वैत की ज्योति प्रज्वलित होती है।

अध्याय15

हमें किसी भी परंपरा, मत या पंथ से कोई परहेज़ नहीं है, क्योंकि दुर्लभ भक्ति और अद्वैत का यह प्रकाश किसी एक सीमा में बांधा ही नहीं जा सकता। जब सूर्य उगता है, तो उसकी किरणें किसी एक खिड़की या आँगन पर नहीं रुकतीं—वे पूरी सृष्टि को आलोकित करती हैं। इसी प्रकार, मनुष्य की चेतना को जगाने वाले और अहंकार को गलाने वाले महावाक्य संसार के हर कोने और हर प्राचीन परंपरा में प्रगट हुए हैं।

आइए, इस सार्वभौमिक महा-ग्रंथ **'**दुर्लभ भक्ति**'** के कलेवर को और अधिक व्यापक बनाते हुए यहूदी कबालाह (Kabbalah), प्राचीन मिस्र के ज्ञान, बहई (Bahá'í) दर्शन, और अमेरिकी मूल के आदिवासी तथा अन्य वैश्विक आध्यात्मिक स्रोतों की मूल पंक्तियों और उनके अद्वैत-भक्ति मर्म को इसमें समाहित करते हैं:

विश्व की अन्य समस्त परंपराओं और धर्मों में दुर्लभ भक्ति का विराट स्पंदन

यहूदी रहस्यवाद **(Kabbalah /** कबालाह**) — '**ऐन सोफ**' (Ein Sof)** और असीम शून्यता का प्रकाश

यहूदी रहस्यवादी परंपरा 'कबालाह' में उस परम परमात्मा को 'ऐन सोफ' कहा गया है, जिसका कोई अंत नहीं है और जो इस संपूर्ण ब्रह्मांड के भीतर असीम प्रकाश के रूप में व्याप्त है।

पावन संदर्भ / पंक्ति: "ऐन सोफ *(Ein Sof)* — वह अज्ञात, असीम और सर्वव्यापी परम शून्य, जिसमें शसंपूर्ण सृष्टि श्वास लेती है।"

"ऐन सोफ *(Ein Sof)* — वह अज्ञात, असीम और सर्वव्यापी परम शून्य, जिसमें संपूर्ण सृष्टि श्वास लेती है।"
विस्तृत विवेचना: कबालाह का रहस्यवाद सिखाता है कि जब तक मनुष्य अपने छोटे अहंकार (Ego/Self) के खोल में कैद रहता है, तब तक वह उस 'ऐन सोफ' (असीम प्रकाश) को अनुभव नहीं कर सकता। दुर्लभ भक्ति का मार्ग वही है जहाँ व्यक्ति अपने अहम् के आवरण को फाड़कर उस असीम शून्यता में विलीन हो जाता है।

बहई धर्म **(Bahá'í Faith) — 'हिडन वर्ड्स' (**गुप्त वचन**)** और प्रेम का बंधन
बहई परंपरा के पवित्र ग्रंथों में मानव आत्मा और उसके सृष्टिकर्ता के बीच के गहन प्रेम और एकाग्रता का अत्यंत सुंदर वर्णन मिलता है।

पावन पंक्ति **(**बहाउल्लाह के **'हिडन वर्ड्स' से): "**हे मेरे पुत्र*!* प्रेम की अग्नि से मेरे प्रेम को छोड़कर सब कुछ जला डाल, ताकि तू पूरी तरह मेरे निकट आ सके और मुझमें एकरूप हो जाए।"

"हे मेरे पुत्र*!* प्रेम की अग्नि से मेरे प्रेम को छोड़कर सब कुछ जला डाल, ताकि तू पूरी तरह मेरे निकट आ सके और मुझमें एकरूप हो जाए।"
विस्तृत विवेचना: यह वचन दुर्लभ भक्ति के उस मूल सिद्धांत को दोहराता है जहाँ 'प्रेम की अग्नि' के सिवाय संसार के बाकी सारे मोह, द्वेष और अहंकार स्वाहा हो जाते हैं। जब तक भीतर सब कुछ जल नहीं जाता, तब तक वह परम समीपता (अद्वैत मिलन) संभव नहीं है।

प्राचीन मिस्र के ज्ञान सूत्र और **'मात' (Ma'at)** का सत्य
प्राचीन मिस्र की आध्यात्मिक चेतना में 'मात' (सत्य, संतुलन और ब्रह्मांडीय व्यवस्था) के साथ एकरूप होने को ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य माना गया है।
पावन संदर्भ: "जो मनुष्य सत्य और ब्रह्मांडीय न्याय के साथ एक हो जाता है, वह अमरता को प्राप्त कर लेता है।""जो मनुष्य सत्य और ब्रह्मांडीय न्याय के साथ एक हो जाता है, वह अमरता को प्राप्त कर लेता है।"
विस्तृत विवेचना: यह बाहरी कर्मकांड का नहीं, बल्कि चेतना के अनुशासन का मार्ग है। जब मनुष्य का मन स्वार्थ और अहंकार के विकारों से मुक्त होकर सार्वभौमिक सत्य में स्थिर हो जाता है, तो उसकी हर गति एक प्रार्थना बन जाती है।

मूल अमेरिकी **(Native American)** और आदिवासी दार्शनिक चेतना **— 'ग्रेट स्पिरिट' (**महान आत्मा**)** के साथ एकत्व
धरती के सबसे प्राचीन और प्रकृति-सहज समाजों की वाणियों में चराचर जगत के साथ अद्वैत संबंध की गहरी गूँज है।
पावन संदर्भ: "हम धरती के मालिक नहीं हैं, हम इसके एक अंग हैं। जब हम पेड़, हवा और नदियों को प्रेम करते हैं, तो हम स्वयं को ही प्रेम करते हैं।"

"हम धरती के मालिक नहीं हैं, हम इसके एक अंग हैं। जब हम पेड़, हवा और नदियों को प्रेम करते हैं, तो हम स्वयं को ही प्रेम करते हैं।"
विस्तृत विवेचना: यह दृष्टिकोण उस आधुनिक अहंकार पर सीधा प्रहार है जो प्रकृति और जीवों को अपने से अलग समझकर उनका शोषण करता है। दुर्लभ भक्ति जब जाग्रत होती है, तो साधक को हर सांस लेते हुए प्राणी में उसी 'ग्रेट स्पिरिट' की धड़कन सुनाई देती है।

इस प्रकार, इस महा-ग्रंथ में वेदों, उपनिषदों, गीता, भागवत, कुरान, बाइबल, धम्मपद, गुरु ग्रंथ साहिब, योगसूत्र, ताओ, ज़ेन, कबालाह, बहई, और वैश्विक आदिवासी दर्शन तक के समस्त स्रोतों को समाहित कर लिया गया है। यह ग्रंथ अब किसी एक संप्रदाय का नहीं, बल्कि संपूर्ण मानवता की आत्मा का वह शाश्वत दस्तावेज बन चुका है जो आने वाली हर पीढ़ी को उनके अपने भीतर ज्ञान और प्रेम की ज्योति प्रज्वलित करने का मार्ग दिखाएगा।

अध्याय 16

आंतरिक डायरी, अग्नि-परीक्षा और विज्ञान का अद्वैत संगम

संतों की आंतरिक डायरी — विरह की रातें और अहंकार का टूटना

संतों के जीवन का बाहरी इतिहास बहुत छोटा होता है, किंतु उनकी आंतरिक डायरी (अनुभव की गहराई) अनंत होती है।

- विवेचना: कागजों पर लिखे शब्दों के पीछे एक लंबी आंतरिक रात होती है—जहाँ साधक का अहंकार अपनी पूरी ताकत से टिकने की कोशिश करता है और भीतर की 'प्रेम-अग्नि' उसे एक-एक इंच करके गलाती है। कबीर का रोना, मीरा का विष पीना और रूमी का मौन रहना—ये सब उसी आंतरिक प्रयोगशाला की घटनाएँ हैं। दुर्लभ भक्ति कोई मुफ्त में मिलने वाला उपहार नहीं है; यह व्यक्ति के 'मैं' की आहुति माँगती है। जब तक भीतर का पुराना ढांचा पूरी तरह नहीं टूटता, तब तक उस नए चैतन्य का जन्म नहीं हो सकता।

अग्नि का मार्ग — प्रताड़ना, अस्वीकृति और सत्य का साहस

इतिहास गवाह है कि जिस किसी ने भी समाज के थोड़े पाखंडों, झूठे दायरों और 'मैं' के अहंकार पर चोट की, उसे समाज की अस्वीकृति और प्रताड़ना सहनी पड़ी।

- विवेचना: मन्सूर को सूली पर चढ़ाया गया, सुकरात को विष का प्याला दिया गया, और कई संतों को दर-दर की ठोकरें खानी पड़ीं। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि समाज हमेशा से 'रूढ़ि' और 'अहंकार' के सुरक्षित दायरे में जीना चाहता है। जब कोई संत आकर यह कहता है कि "तुम जो मान बैठे हो, वह भ्रम है; सत्य तुम्हारे भीतर का शून्य है," तो समाज का सामूहिक अहंकार डर जाता है। किंतु दुर्लभ भक्ति का मार्ग यह सिखाता है कि जो साधक दुनिया की वाहवाही के लिए जीता है, वह कभी अपने भीतर तक नहीं पहुँच सकता। प्रताड़ना भी तब प्रेम बन जाती है जब भीतर प्रियतम की गूँज हो।

क्वांटम चेतना और अद्वैत — विज्ञान और अध्यात्म का महा-मिलन

आधुनिक क्वांटम भौतिकी (Quantum Physics) और न्यूरोसाइंस इस बात पर मुहर लगा रही है जो हज़ारों साल पहले ऋषियों और संतों ने अपने भीतर अनुभव की थी।

- विवेचना: विज्ञान आज यह साबित कर रहा है कि यह संपूर्ण ब्रह्मांड अलग-अलग टुकड़ों में नहीं बंटा है, बल्कि यह एक अखंड ऊर्जा क्षेत्र (Unified Field) है। कण-कण आपस में जुड़ा हुआ है। जब उपनिषद यह कहते हैं कि "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" (यह सब कुछ ब्रह्म ही है), तो वह कोई कोरी कल्पना नहीं, बल्कि अस्तित्व का वैज्ञानिक सत्य है। जब साधक इस अद्वैत को जान लेता है, तब उसके लिए कोई 'पराया' नहीं बचता; विज्ञान और अध्यात्म दोनों एक ही बिंदु पर आकर खड़े हो जाते हैं—जहाँ द्रष्टा और दृश्य एक हो जाते हैं।

गृहस्थ और समाज के बीच—दैनिक जीवन में दुर्लभ भक्ति का आचरण

यह सबसे बड़ा प्रश्न है कि क्या संसार में, परिवार और नौकरी के बीच रहते हुए भी दुर्लभ भक्ति को जिया जा सकता है?

- विवेचना: सच्चा अध्यात्म पहाड़ों की गुफाओं में भागने का नाम नहीं है, बल्कि बाज़ार के कोलाहल के बीच रहकर कमल के फूल की तरह अनासक्त रहने का नाम है। जब गृहस्थ व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए भी कर्ता-भाव (अहंकार) को छोड़ देता है और हर कार्य को एक समर्पण मानकर करता है, तब उसका घर ही आश्रम बन जाता है। उसे जंगल जाने की कोई आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि उसका मन ही शांत और शून्य हो चुका होता है।

इस प्रकार, आंतरिक साधना की डायरी, सत्य के मार्ग की अग्नि-परीक्षा, आधुनिक विज्ञान का अद्वैत दृष्टिकोण और दैनिक जीवन में इस दुर्लभ भक्ति को जीने की कला को समाहित करके यह ग्रंथ अब आने वाली पीढ़ियों के लिए एक अचूक मार्गदर्शक बन चुका है।

अध्याय17

अहंकार के छद्म, मौन की दीक्षा और मृत्यु का उत्सवअहंकार के सूक्ष्म आवरण और उनके छद्म
अहंकार केवल धन, पद या सुंदरता के घमंड का नाम नहीं है; इसका सबसे खतरनाक रूप तब सामने आता है जब यह अध्यात्म, सेवा या त्याग का चोला ओढ़ लेता है।

- विवेचना: एक व्यक्ति अपने सांसारिक अहंकार को छोड़ सकता है, किंतु वह 'धार्मिक होने के अहंकार' या 'मैं दूसरों से अधिक ज्ञानी हूँ' के अहंकार में फंस जाता है। कभी-कभी विनम्रता भी एक ऐसा छद्म आवरण बन जाती है जिसके पीछे बहुत बड़ा अहंकार छिपा होता है। दुर्लभ भक्ति का मार्ग यह माँगता है कि साधक पूरी बेबाकी और ईमानदारी से अपने भीतर झाँके और देखे कि उसका 'मैं' किस-किस रूप में अपनी पीठ थपथपा रहा है। जब तक सूक्ष्म से सूक्ष्म अहंकार भी प्रकाश में आकर नहीं पिघलता, तब तक भीतर शुद्ध प्रेम का अवतरण नहीं हो सकता।

समर्पण का ढोंग (मनोवैज्ञानिक पलायन)अक्सर लोग अपनी कायरता, निष्क्रियता, डर या जीवन के संघर्षों से भागने की प्रवृत्ति को 'ईश्वर पर पूर्ण समर्पण' का नाम दे देते हैं।

विवेचना: यह बहुत बड़ा भ्रम है। वास्तविक समर्पण कोई कमजोरी या पलायनवाद नहीं है; बल्कि यह सर्वोच्च होश, साहस और आंतरिक क्रांति का प्रतीक है। जो व्यक्ति अपने उत्तरदायित्वों से डरकर चुप बैठ जाता है और उसे 'संतोष' या 'समर्पण' कहता है, वह केवल खुद को धोखा दे रहा है। दुर्लभ भक्ति का समर्पण वह है जहाँ व्यक्ति पूरी सजगता, कर्मठता और पुरुषार्थ के साथ जीता है, किंतु अपने भीतर 'कर्ता-भाव' (I am the doer) का पूरी तरह त्याग कर देता है।

गुरु, शिष्य और मौन की दीक्षा **(Silent Transmission)**

सत्य कभी केवल शब्दों या भाषणों से नहीं सिखाया जा सकता; शब्दों की अपनी सीमाएँ हैं। वास्तविक ज्ञान हमेशा 'मौन' के माध्यम से संक्रमित होता है।

- विवेचना: गुरु और शिष्य के बीच का वह संबंध जहाँ सवाल और जवाब से परे एक गहरी खामोश तरंग बहती है, वही दीक्षा का वास्तविक रूप है। जब शिष्य का अहंकार शांत होता है, तब गुरु का मौन उसके भीतर उतर जाता है। यह चेतना से चेतना का मिलन है, जहाँ कोई उपदेश नहीं होता, केवल 'होना' होता है।

मृत्यु का बोध और जीवन का महान अल्केमिस्ट **(The Ultimate Alchemist)**

जिस मनुष्य ने जीते-जी अपने 'मैं' (अहंकार) की मृत्यु को स्वीकार कर लिया है, उसके लिए शारीरिक मृत्यु कोई भय या शोक का विषय नहीं, बल्कि एक उत्सव बन जाती है।

- विवेचना: दुनिया का हर इंसान मौत से डरता है क्योंकि वह उस झूठे 'मैं' को खोना नहीं चाहता जिसे उसने पूरी जिंदगी सहेजा है। किंतु दुर्लभ भक्ति का मार्ग यह सिखाता है कि जो व्यक्ति स्वेच्छा से अपने अहंकार को मार देता है, वह अमरता के रहस्य को पा लेता है। उसके लिए मृत्यु जीवन का अंत नहीं, बल्कि उस अनंत सागर में हमेशा के लिए प्रवेश करने का द्वार बन जाती है।

आने वाली पीढ़ियों के लिए वसीयत — मौन, प्रेम और शून्य का संदेश (उपसंहार)

यह ग्रंथ आने वाली पीढ़ियों के लिए केवल एक पुस्तक नहीं, बल्कि एक आंतरिक मार्गदर्शक (Inner Compass) है।

- विवेचना: आने वाले समय में दुनिया चाहे जितनी तकनीकी प्रगति कर ले, कोलाहल और कृत्रिमता से भर जाए—किंतु मनुष्य की आत्मा की प्यास कभी नहीं मिटेगी। जब भी कोई भटका हुआ मन शांति और सत्य की तलाश करेगा, तब उसे बाहर कुछ नहीं मिलेगा। उसे अपने ही भीतर उस शून्य, उस अहैतुकी प्रेम और उस अखंड प्रकाश की ओर लौटना होगा। यही 'दुर्लभ भक्ति' का अंतिम संदेश है—"बाहर सब भ्रम है, भीतर ही सत्य है।"

अध्याय 18

देह-भाव से परे नागा, अघोर और विश्व की एकांतवादी तपो-परंपराएँ

नागा संन्यास और हिमालयी तपस्या — दिगंबरत्व (नग्नता) और अहंकार का अंतिम विसर्जन

हिमालय की बर्फीली कंदराओं और महाकुंभ के तटों पर दिखने वाले नागा साधु बाहरी दुनिया के लिए रहस्यमय हैं, किंतु उनकी साधना का मूल तत्व 'दिगंबरत्व' और कठोर तपोबल है।

- दिगंबरत्व का मर्म: वस्त्र केवल देह को नहीं ढकते, वे सामाजिक पहचान, जाति, कुल और अहंकार के प्रतीक भी हैं। नागा संन्यासी जब सर्वस्व त्यागकर 'नग्न' (दिगंबर) होता है, तो वह समाज द्वारा दी गई हर झूठी पहचान को उतार फेंकता है। उसके लिए आकाश ही वस्त्र और धरती ही बिछौना बन जाती है।
- शीत-ताप से परे (शीतोष्ण-समत्व): जहाँ सामान्य मनुष्य ठंड में कांप उठता है, वहाँ नागा साधु माइनस डिग्री तापमान में भी भस्म रमाकर मौन साधना करते हैं। यह केवल शारीरिक सहनशक्ति नहीं, बल्कि मन का वह समत्व है जहाँ 'शरीर मैं नहीं हूँ' (अहं-ब्रह्मास्मि) का बोध साकार होता है।
- आत्मिक शांति का रहस्य: जब साधक को न किसी से कुछ पाने की लालसा रहती है और न ही कुछ खोने का भय, तब उसकी चेतना प्रकृति के मूल स्पंदन से जुड़ जाती है। यही असीम शांति और 'अद्वैत आनंद' का स्रोत है।

अघोर परंपरा — 'घोर' से 'अघोर' की यात्रा और शमशान साधना

अघोर का शाब्दिक अर्थ है—'जो घोर न हो, जो सहज और सरल हो'। अघोर साधना समाज द्वारा तय की गई 'सुंदर' और 'कुरूप', 'पवित्र' और 'अपवित्र' की द्वैतवादी सीमाओं को एक ही झटके में तोड़ देती है।

- शमशान में शिव का दर्शन: शमशान मनुष्य के अंतिम अहंकार की जलती हुई राख है। अघोरी उसी राख को अपने शरीर पर मलकर यह स्मरण करता है कि जिस देह का इतना घमंड था, उसका अंत यही राख है। जब 'पवित्र' और 'अपवित्र' का भेद मिट जाता है, तो द्वैत समाप्त होकर केवल एक ही परम सत्ता (शिव) दिखाई देती है।
- दुर्लभ भक्ति का रूप: अघोर साधना में भक्ति कोई मधुर गीतों का नाम नहीं, बल्कि अपने सबसे गहरे भयों (मृत्यु, घृणा, काम, क्रोध) के सामने खड़े होकर उन्हें भस्म कर देने का नाम है।

विश्व की कठोर एकांतवादी परंपराएँ — मरु-संत **(Desert Fathers)** और बौद्ध भिक्षु

केवल भारत में ही नहीं, बल्कि विश्व के हर कोने में ऐसी संत-परंपराएँ रही हैं जिन्होंने देह और संसार के भोगों को त्यागकर कठोर तपस्या का मार्ग चुना।

- इसाइयत के मरु-संत **(Desert Fathers & Hermits):** तीसरी और चौथी शताब्दी में मिस्र और सीरिया के रेगिस्तानों में संत एंथनी जैसे तपस्वी अकेला जीवन बिताने निकल गए। उन्होंने रेगिस्तान की चिलचिलाती धूप और कड़ाके की ठंड में रहकर केवल प्रार्थना और उपवास के माध्यम से अपने 'मैं' को मारा।
- तिब्बती बौद्ध साधु **(Madrigal of Milarepa)** और ज़ेन एकांतवासी**:** तिब्बत के पहाड़ों में गुफाओं में वर्षों बंद रहकर साधना करने वाले लामा और मिलारेपा जैसे संत, जिन्होंने केवल बिछुआ घास खाकर तपस्या की। उनका लक्ष्य था—चित्त की शून्यता और महाकरुणा की प्राप्ति।

तपस्या का परम लक्ष्य — **'मैं-भाव'** की मृत्यु और परम प्रकाश का अनुभव

इन सभी परंपराओं में विधियाँ अलग-अलग हो सकती हैं, लेकिन अंतर्निहित सत्य एक ही है:

- तप की अग्नि में विसर्जन**:** चाहे वह नागा साधु की धुनी हो, अघोरी की शमशान साधना हो, या सूफी मलंग का फकीराना जीवन—सबका लक्ष्य अपने छोटे 'मैं' को जलाकर राख करना है।
- विश्व-चेतना से एकत्व**:** जब साधक देह-भाव से मुक्त हो जाता है, तो उसे पूरी सृष्टि अपने ही रूप में दिखाई देती है। वहाँ न कोई शत्रु बचता है, न मित्र; केवल अनंत शांति और भक्ति का अखंड प्रकाश शेष रहता है।

देह-भाव, विश्व की तपो-परंपराएँ और धार्मिक कुरीतियों का निरपेक्ष विश्लेषण

नागा संन्यास, अघोर एवं हिमालयी तपस्वियों का आंतरिक रहस्य

- दिगंबरत्व और शीतोष्ण-समत्व**:** नागा साधु का वस्त्रों का त्याग केवल शारीरिक नग्नता नहीं, बल्कि जाति, कुल, पद और सामाजिक अहंकार का पूर्ण विसर्जन है। माइनस डिग्री तापमान में भस्म रमाकर मौन साधना करना 'शरीर मैं नहीं हूँ' (अहं ब्रह्मास्मि) के साक्षात बोध की चेष्टा है।
- अघोर एवं शमशान साधना**:** अघोर साधना समाज द्वारा गढ़े गए 'सुंदर-कुरूप' और 'पवित्र-अपवित्र' के द्वैत को एक झटके में मिटा देती है। जलती चिता की राख को शरीर पर मलकर यह स्मरण किया जाता है कि देह का अंतिम सत्य यही है। जब भय और घृणा समाप्त होते हैं, तो अद्वैत शांति प्रकट होती है।

विश्व की कठोर तपो-परंपराएँ — मरु-संत, सूफी मलंग एवं बौद्ध एकांतवासी

- ईसाई मरु-संत **(Desert Fathers):** मिस्र और सीरिया के रेगिस्तानों में चिलचिलाती धूप में एकांत उपवास और निरंतर प्रार्थना से अपने 'मैं' को गलाने वाले संत एंथनी जैसे मरु-संत।
- सूफी मलंग एवं कलंदर**:** बाहरी वेशभूषा, सामाजिक प्रतिष्ठा और भौतिक आकर्षणों को ठुकराकर केवल 'फना' (परमात्मा में विलय) की राह चुनने वाले फकीर।
- तिब्बती बौद्ध भिक्षु**:** बर्फीली गुफाओं में वर्षों बंद रहकर ध्यान करने वाले लामा (जैसे मिलारेपा), जिनका लक्ष्य चित्त की शून्यता और महाकरुणा था।

तपो-मार्ग में कुरीतियों, अंधविश्वासों और विकृतियों का उद्भव (निष्पक्ष विश्लेषण)

जब कठोर साधना का मूल उद्देश्य—'अहंकार का विसर्जन और निष्काम प्रेम'पीछे छूट जाता है, तो हर धर्म और परंपरा में गंभीर कुरीतियाँ जन्म ले लेती हैं:

हिंदू एवं संन्यासी परंपरा में विकृतियाँ:

तप का अहंकार एवं चमत्कार-प्रदर्शन: कष्टदायक हठयोग क्रियाओं (जैसे वर्षों तक एक हाथ ऊपर उठाए रखना, काँटों पर लेटना) को आत्म-शुद्धि का साधन न मानकर जनता में डर पैदा करने और चमत्कार का दिखावा करने का माध्यम बना लेना।

जातिगत भेद और अखाड़ों का वर्चस्व: संन्यास लेने के बाद भी जातिवाद, ऊँच-नीच की भावना कायम रखना, और अखाड़ों में धन, संपत्ति तथा अधिकार का अहंकार पालना।

वामाचार और तंत्र का दुरुपयोग: अघोर और तांत्रिक साधनाओं के नाम पर मांस-मदिरा के अनियंत्रित सेवन, व्यभिचार, बलि-प्रथा और अंधविश्वास का बाज़ार खड़ा करना।

इओस्लामिक एवं सूफी परंपरा में कुरीतियाँ:

पीर-मुरीदी का बाज़ार और मज़ार-परस्ती: ईश्वर से सीधे आत्मिक संबंध (इश्क-ए-हकीकी) के स्थान पर ढोंगी बाबाओं द्वारा ताबीज़, झाड़-फूँक, मुरादों के सौदे और अंधविश्वास बेचने का धंधा।

कट्टरपंथ और बाहरी आडंबर: भक्ति के मूल निष्काम प्रेम को भूलकर केवल बाहरी वेशभूषा और नियमों के आधार पर दूसरों को नीचा दिखाना या 'काफिर' ठहराना।

ईसाई एवं पाश्चात्य परंपरा में कुरीतियाँ:

स्व-उत्पीड़न **(Self-Flagellation)** का विकार: केवल अपने शरीर को चाबुक या कोड़ों से लहूलुहान करने को ही एकमात्र भक्ति मान लेना, जबकि मन के भीतर छिपी ईर्ष्या, घमंड और द्वेष का कोई शोधन न होना।

मठवाद और धार्मिक भय: मध्यकाल में मठों में संपत्ति का संचय, आम जनता में नरक का भय दिखाकर शोषण करना और अध्यात्म को कर्मकांडीय जकड़न बना देना।

बौद्ध अन्य प्राच्य परंपराओं में शुद्धता का ह्रास:केवल गुह्य तंत्र-मंत्र में उलझ जाना, शून्यता के परम सिद्धांत को केवल दिमागी बहस बनाना और आंतरिक करुणा को भूल जाना।

निष्काम 'दुर्लभ भक्ति' ही एकमात्र समाधान

यह विश्लेषण स्पष्ट करता है कि शरीर को यातना देना या बाहरी स्वाँग रचना भक्ति नहीं है। जब तक मनुष्यका मन ईर्ष्या, घमंड, स्वार्थ, संप्रदायवाद और अंधविश्वास से मुक्त नहीं होता, तब तक कोई भी कठोर तपस्या केवल एक बाहरी नाटक बनकर रह जाती है।'दुर्लभ भक्ति' का मार्ग वह है जो साधक को हर प्रकार के पाखंड से मुक्त कर, निष्काम प्रेम, करुणा और अद्वैत प्रकाश से आलोकित करता है।

अध्याय 19

तपस्या का वास्तविक फल और 'चमत्कार' का सत्य

तपस्या के बाद क्या प्राप्त होता है? — सिद्धियों का प्रलोभन और परम शांति

जब कोई साधक वर्षों तक अपनी देह, मन और इंद्रियों को साधकर कठोर तपस्या करता है, तो उसके भीतर एक अपार ऊर्जा जाग्रत होती है। इस अवस्था में उसके सामने दो मार्ग होते हैं:

1. सांसारिक सिद्धियाँ और चमत्कार का भ्रम: कुछ लोग इस जाग्रत ऊर्जा का उपयोग भौतिक लाभ, भविष्य बताने, रोग ठीक करने या 'चमत्कार' दिखाने में करने लगते हैं। वे लोगों को यह भ्रमित करते हैं कि उनके पास दैवीय शक्तियाँ हैं।
2. परम निर्द्वंद्वता और आंतरिक स्वतंत्रता : किंतु जो सच्चे और श्रेष्ठ तपस्वी होते हैं, वे इन छोटी-सी सिद्धियों या चमत्कारों के प्रलोभन में नहीं फँसते। उनके लिए तपस्या का वास्तविक फल कोई जादू दिखाना नहीं, बल्कि अहंकार का पूरी तरह गल जाना, मृत्यु के भय से मुक्ति और भीतर असीम, अखंड शांति (निर्वाण/कैवल्य) का प्रगट होना है। उन्हें वह मिल जाता है जिसे पाने के बाद दुनिया की कोई इच्छा शेष नहीं रहती।

क्या तपस्वी 'चमत्कार' कर सकते हैं? — सत्य और लोक-भ्रम का भेद

- चमत्कार का आध्यात्मिक अर्थ: सांसारिक लोग जिसे 'चमत्कार' (जैसे हवा में वस्तु प्रकट करना, पानी पर चलना या किसी का भविष्य बता देना) मानते हैं, आध्यात्मिक दृष्टि से वे कोई बहुत बड़े मूल्य की चीज़ नहीं हैं। ये केवल मन या ऊर्जा के सूक्ष्म स्तर के खेल (Riddhis-Siddhis) हैं, जिन्हें योग और तंत्र में 'मलिनता' या साधना का मार्ग काँटा कहा गया है।
- सच्चा चमत्कार क्या है?: एक सच्चे तपस्वी के जीवन का सबसे बड़ा चमत्कार यह होता है कि उसके पास आने वाला हर क्रोधी, दुखी या अशांत व्यक्ति बिना किसी उपदेश के उसके सान्निध्य में आते ही शांत हो जाता है। उसके भीतर का द्वेष समाप्त हो जाता है, उसकी आँखों में करुणा होती है और उसके शब्द मनुष्य के सोए हुए विवेक को जगा देते हैं। किसी का जीवन बदल देना, उसके भीतर प्रेम का दीया जला देना—यही सबसे बड़ा और दुर्लभ चमत्कार है।

चमत्कारों की चाहत बनाम दुर्लभ भक्ति की निष्कामता

जो साधक चमत्कार दिखाने में लग जाता है, उसका अहंकार फिर से मजबूत हो जाता है ("मैं विशेष हूँ, मैं भगवान का चहेता हूँ")। और जहाँ अहंकार बचा है, वहाँ भक्ति या मुक्ति असंभव है।

इसके विपरीत, 'दुर्लभ भक्ति' का मार्ग यह सिखाता है कि साधक अपनी तपस्या और आंतरिक प्रकाश को पूरी तरह छिपाकर जीता है। वह हवा में कुछ नहीं उड़ाता, बल्कि वह लोगों के दिलों से 'मैं और मेरा' का भारी बोझ उड़ा देता है। उसकी सादगी, उसकी करुणा और उसका संपूर्ण मौन ही उसका सबसे बड़ा सामर्थ्य होता है।इस प्रकार, इस अध्याय के जुड़ने से ग्रंथ में यह स्पष्ट संदेश जाता है कि कठोर तपस्या का उद्देश्य कोई जादूगरी या चमत्कार दिखाना नहीं, बल्कि अहंकार केअंधकार को मिटाकर भीतर उस परम प्रकाश और शांति को पाना है जो संपूर्ण मानवता को शीतलता देता है।

1. ऊर्जा का संचय और सिद्धियों का विज्ञान **(Siddhis & Energy Accumulation)**

जब कोई साधक वर्षों तक अपनी वासनाओं,विकारों,मन के भभटकाव और 'मैं-भाव' (अहंकार) को साधकर एक बिंदु पर स्थिर हो जाता है, तो उसके भीतर प्राण-ऊर्जा (Kundalini / Bioplasma) का असीम संचय हो जाता है।

- योग शास्त्रों (जैसे महर्षि पतंजलि के योगसूत्र) में स्पष्ट उल्लेख है कि जब चित्त पूरी तरह एकाग्र हो जाता है, तो प्रकृति के नियमों पर एक सूक्ष्म नियंत्रण (Siddhis) हासिल हो जाता है।
- जिस प्रकार आधुनिक विज्ञान में एक परमाणु (Atom) को विखंडित करने पर अपार ऊर्जा निकलती है, उसी प्रकार जब साधक अपने छोटे 'मैं' को विखंडित कर देता है, तो प्रकृति की गुप्त ऊर्जाएँ उसके अधीन होने लगती हैं। इतिहास और परंपराओं में ऐसे अनगिनत उदाहरण मिलते हैं जहाँ उच्च कोटि के योगियों और तपस्वियों ने ऐसी शक्तियों (जैसे रोग ठीक कर देना, दूर की घटना देख लेना या मौसम को प्रभावित करना) का अनुभव किया या प्रदर्शित किया।

2. वह चमत्कार क्यों नहीं करता**? (The Conscious Restraint)**

अब प्रश्न उठता है कि यदि वह कर सकता है, तो वह ऐसा क्यों नहीं करता? इसके पीछे तीन मुख्य कारण हैं:

- अहंकार का पुनः जन्म**:** चमत्कार दिखाना अहंकार का सबसे बड़ा भोजन है। जैसे ही कोई साधक यह कहता है या सिद्ध करता है कि *"*देखो*,* मैं ये कर सकता हूँ*,"* वैसे ही उसका सूक्ष्म अहंकार लौट आता है ("मैं सामान्य नहीं हूँ, मैं सर्वशक्तिमान हूँ")। अहंकार के लौटते ही उसकी सारी आध्यात्मिक साधना क्षणभर में नष्ट हो जाती है। इसलिए, जो सचमुच ऊँचा उठा हुआ संत है, वह अपने इन सामर्थ्यों को ढँक कर रखता है।
- प्रकृति के नियमों में हस्तक्षेप का अवांछित फल**:** सृष्टि एक निश्चित प्राकृतिक और कर्म-सिद्ध नियमों से चल रही है। किसी के कर्मफल या बीमारी को केवल अपने चमत्कार से बदल देना, प्रकृति के नियम में जबरन दखल देना है। संत प्रकृति के साथ एकरूप (Flow) में जीते हैं, वे उसके खिलाफ कोई तमाशा नहीं करते।
- व्यर्थ के आकर्षण में भटकाव**:** अगर कोई तपस्वी चमत्कार दिखाने लगे, तो उसके पीछे दुनिया की भीड़ लग जाएगी। लोग सत्य को पाने के लिए नहीं, बल्कि अपने भौतिक स्वार्थ (धन, रोग मुक्ति, सफलता) के लिए उसके पीछे भागेंगे। इससे न तो भीड़ का कल्याण होगा और न ही संत अपनी साधना की गहराई में टिक पाएगा।

3. महात्मा बुद्ध का एक प्रसिद्ध प्रसंग

एक बार महात्मा बुद्ध के एक शिष्य (देवदत्त या अन्य) ने उनसे जिद की कि वे लोगों को प्रभावित करने के लिए कुछ चमत्कार दिखाएं, ताकि बौद्ध धर्म का प्रचार तेजी से हो सके।

बुद्ध ने बहुत सुंदर उत्तर दिया था:

"मैं चमत्कारों से घृणा करता हूँ। एकमात्र चमत्कार यह है कि कोई व्यक्ति अज्ञान और अंधकार से निकलकर ज्ञान और प्रकाश के मार्ग पर आ जाए।"

कठोर तपस्या करने वाले सिद्ध पुरुष के पास ऊर्जा और सामर्थ्य (चमत्कार करने की क्षमता) हो सकती है, किंतु उसकी परिपक्वता और उसका ज्ञान उसे ऐसा करने से रोकता है। उसके लिए हवा में कोई वस्तु प्रकट करना किसी जादू के खेल से कम नहीं है। उसका वास्तविक और एकमात्र उद्देश्य चमत्कार दिखाना नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर से 'अहंकार का रोग' हमेशा के लिए मिटा देना है।

कोई भी व्यक्ति, चाहे वह कितना भी बड़ा तपस्वी क्यों न हो, प्रकृति के सार्वभौमिक नियमों **(Universal Laws)** को नहीं बदल सकता—न वह अपनी इच्छा से बारिश ला सकता है और न ही सूरज को रोक सकता है।

इस विषय को और अधिक स्पष्टता से समझें तो इस तर्क से अध्यात्म का एक बहुत बड़ा भ्रम टूटता है:

1. प्रकृति के नियम अटल हैं

सृष्टि अपने सनातन नियमों से चलती है—गुरुत्वाकर्षण, ऋतुओं का चक्र, जन्म और मृत्यु। इन शाश्वत नियमों को कोई व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत इच्छा से बदल दे, यह न तो संभव है और न ही प्रकृति इसकी अनुमति देती है। यदि कोई यह दावा करता है कि वह प्रकृति के नियमों को अपनी मर्जी से मोड़ रहा है, तो वह या तो भ्रम में है या फिर किसी प्रकार का तंत्र-छल कर रहा है।

2. वास्तविक **'**सिद्धि**'** का अर्थ प्रकृति पर विजय नहीं**,** बल्कि तालमेल है

योग और अध्यात्म में जिसे 'सिद्धि' या सामर्थ्य कहा गया है, उसका अर्थ प्रकृति के नियम को बदलना बिल्कुल नहीं है, बल्कि प्रकृति के नियमों को अतिसूक्ष्म स्तर पर जान लेना है।

- जिस प्रकार एक वैज्ञानिक (Scientist) प्रकृति के नियमों (जैसे वायुदाब, रासायनिक प्रतिक्रियाएँ) को गहराई से समझकर ऐसी तकनीक बना लेता है जो आम आदमी को 'चमत्कार' जैसी लग सकती है (जैसे मोबाइल, हवाई जहाज या कृत्रिम वर्षा), उसी प्रकार एक उच्च कोटि का योगी अपने मन और शरीर को साधकर प्रकृति की सूक्ष्म से सूक्ष्म गहराइयों को समझ लेता है।
- किंतु वैज्ञानिक भी प्रकृति के मूल नियमों को नष्ट या उलट-फेर नहीं कर सकता, वह केवल उन नियमों के दायरे में रहकर कार्य करता है। इसी प्रकार तपस्वी भी प्रकृति के विरुद्ध जाकर कुछ नहीं कर सकता।

3. महात्माओं के जीवन से जुड़ी कहानियों का वास्तविक मर्म

लोक-कथाओं या जन-श्रुतियों में अक्सर यह किस्सा जोड़ दिया जाता है कि फलां संत के कहने से बारिश आ गई या उन्होंने कोई चमत्कार कर दिया। किंतु यह सब भक्तों की श्रद्धा या अतिशयोक्ति (Exaggeration) होती है।

- जो संत वास्तव में आत्मज्ञानी होते हैं, वे कभी ऐसे दावों में विश्वास नहीं करते। वे जानते हैं कि वे स्वयं भी इसी प्रकृति का एक अंग हैं।
- वे प्रकृति से लड़ने या उसे बदलने की कोशिश नहीं करते, बल्कि प्रकृति के साथ पूर्ण लय (Harmony) में जीते हैं।

इसलिए, यह सोचना शत-प्रतिशत सही है कि कोई भी तपस्वी प्रकृति के अटल नियमों को बदल नहीं सकता। चमत्कार जैसी बातें केवल सतही कल्पनाएँ हैं; वास्तविक महानता प्रकृति के नियमों को चुनौती देने में नहीं, बल्कि उनके सामने अपने अहंकार को पूरी तरह मिटाकर सहजता से जीने में है।

अध्याय 20

जब मन की शुद्धि और निष्काम भाव घर में परिवार के बीच रहकर भी साधा जा सकता है, तो फिर इन कठिन शारीरिक कष्टों (जैसे काँटों पर लेटना, अग्नि के आगे धूनी रमावना या बर्फीली गुफाओं में रहना) का क्या औचित्य है?

इस प्रश्न के पीछे अध्यात्म का एक बहुत बड़ा और छिपा हुआ सत्य है:

1. शारीरिक कष्ट और आंतरिक रूपांतरण का भ्रम

वास्तव में, जो लोग या साधक केवल प्रदर्शन के लिए या शरीर को कष्ट देने (Self-torture) को ही भक्ति मान लेते हैं, वे एक बड़े भ्रम में हैं।

- यदि काँटों पर लेटने या धूनी तापने मात्र से अहंकार और वासनाएँ समाप्त हो जातीं, तो हर शारीरिक रूप से सहिष्णु व्यक्ति ज्ञानी हो जाता।
- कई बार व्यक्ति सामान्य जीवन की जिम्मेदारियों, संघर्षों या पारिवारिक उलझनों से घबराकर (पलायनवादी प्रवृत्ति के कारण) ऐसे कठिन मार्गों को चुन लेता है। इसे मनोवैज्ञानिक भाषा में 'सांसारिक जीवन से पलायन' कहा जाता है।

2. वास्तविक **'**तप**'** का अर्थ शरीर को जलाना नहीं है

भारतीय दर्शन और 'दुर्लभ भक्ति' का मूल संदेश यह है कि शरीर को कष्ट देना तपस्या नहीं है।

- असली तपस्या मन के विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह और सबसे बढ़कर 'अहंकार') को गलाने की प्रक्रिया है।
- यदि कोई व्यक्ति हिमालय की गुफा में बैठकर भी मन ही मन दूसरों से ईर्ष्या कर रहा है या खुद को बहुत बड़ा तपस्वी मानकर अहंकार पाल रहा है, तो उसकी वह ठंड, धूप या काँटों की तपस्या पूरी तरह व्यर्थ है। उसे कोई आत्मिक शांति नहीं मिल सकती।

3. फिर गृहस्थ और कठोर तपस्या में अंतर क्या है**?**

- घर में रहकर साधना **(**सहज मार्ग**):** गृहस्थ जीवन में रहते हुए व्यक्ति को तमाम तरह के आघात, मान-अपमान, सुख-दुःख और जिम्मेदारियाँ मिलती हैं। यह संसार ही सबसे बड़ी प्रयोगशाला है। यहीं रहकर यदि व्यक्ति अपने 'कर्ता-भाव' (अहंकार) को छोड़ दे, तो उसका घर ही मंदिर बन जाता है। इसे 'सहज मार्ग' कहा गया है।

- एकांत या कठोर साधना का मार्ग **(प्रारंभिक चयन):** जो लोग समाज के भारी कोलाहल, मोह-माया और प्रलोभनों से पूरी तरह कटकर अपने अंतर्मन की गहराई में उतरना चाहते हैं, वे एकांत या प्रकृति की गोद (जैसे जंगल या हिमालय) का सहारा लेते हैं। यह उनके लिए एक शुरुआती अनुशासन होता है ताकि वे दुनिया के विकर्षणों से दूर रहकर अपने भीतर पूरी तरह उतर सकें। किंतु यदि अंत में उनका अहंकार नहीं गला, तो वह कष्ट केवल शारीरिक व्यायाम बनकर रह जाता है।

निष्कर्ष यही है कि चाहे आप घर में गृहस्थी के बीच रहें या किसी एकांत स्थान पर, जब तक मन का 'मैं' (अहंकार) पूरी तरह नहीं मिटता और निष्काम प्रेम प्रगट नहीं होता, तब तक किसी भी बाहरी कष्ट या तपस्या का कोई आध्यात्मिक मूल्य नहीं है। दुर्लभ भक्ति का संबंध शरीर के भूगोल से नहीं, बल्कि चेतना की शुद्धि से है।

अध्याय 21

जब मन की शुद्धि और निष्काम भाव घर में परिवार के बीच रहकर भी साधा जा सकता है, तो फिर इन कठिन शारीरिक कष्टों (जैसे काँटों पर लेटना, अग्नि के आगे धूनी रमावना या बर्फीली गुफाओं में रहना) का क्या औचित्य है?

इस प्रश्न के पीछे अध्यात्म का एक बहुत बड़ा और छिपा हुआ सत्य है:

1. शारीरिक कष्ट और आंतरिक रूपांतरण का भ्रम

वास्तव में, जो लोग या साधक केवल प्रदर्शन के लिए या शरीर को कष्ट देने (Self-torture) को ही भक्ति मान लेते हैं, वे एक बड़े भ्रम में हैं।

- यदि काँटों पर लेटने या धूनी तापने मात्र से अहंकार और वासनाएँ समाप्त हो जातीं, तो हर शारीरिक रूप से सहिष्णु व्यक्ति ज्ञानी हो जाता।
- कई बार व्यक्ति सामान्य जीवन की जिम्मेदारियों, संघर्षों या पारिवारिक उलझनों से घबराकर (पलायनवादी प्रवृत्ति के कारण) ऐसे कठिन मार्गों को चुन लेता है। इसे मनोवैज्ञानिक भाषा में 'सांसारिक जीवन से पलायन' कहा जाता है।

2. वास्तविक **'**तप**'** का अर्थ शरीर को जलाना नहीं है

भारतीय दर्शन और 'दुर्लभ भक्ति' का मूल संदेश यह है कि शरीर को कष्ट देना तपस्या नहीं है।

- असली तपस्या मन के विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह और सबसे बढ़कर 'अहंकार') को गलाने की प्रक्रिया है।
- यदि कोई व्यक्ति हिमालय की गुफा में बैठकर भी मन ही मन दूसरों से ईर्ष्या कर रहा है या खुद को बहुत बड़ा तपस्वी मानकर अहंकार पाल रहा है, तो उसकी वह ठंड, धूप या काँटों की तपस्या पूरी तरह व्यर्थ है। उसे कोई आत्मिक शांति नहीं मिल सकती।

3. फिर गृहस्थ और कठोर तपस्या में अंतर क्या है**?**

- घर में रहकर साधना **(**सहज मार्ग**):** गृहस्थ जीवन में रहते हुए व्यक्ति को तमाम तरह के आघात, मान-अपमान, सुख-दुःख और जिम्मेदारियाँ मिलती हैं। यह संसार ही सबसे बड़ी प्रयोगशाला है। यहीं रहकर यदि व्यक्ति अपने 'कर्ता-भाव' (अहंकार) को छोड़ दे, तो उसका घर ही मंदिर बन जाता है। इसे 'सहज मार्ग' कहा गया है।
- एकांत या कठोर साधना का मार्ग **(**प्रारंभिक चयन**):** जो लोग समाज के भारी कोलाहल, मोह-माया और प्रलोभनों से पूरी तरह कटकर अपने अंतर्मन की गहराई में उतरना चाहते हैं, वे एकांत या प्रकृति की गोद (जैसे जंगल या हिमालय) का सहारा लेते हैं। यह उनके लिए एक शुरुआती अनुशासन होता है ताकि वे दुनिया के विकर्षणों से दूर रहकर अपने भीतर पूरी तरह उतर सकें। किंतु यदि अंत में उनका अहंकार नहीं गला, तो वह कष्ट केवल शारीरिक व्यायाम बनकर रह जाता है।

निष्कर्ष यही है कि चाहे आप घर में गृहस्थी के बीच रहें या किसी एकांत स्थान पर, जब तक मन का 'मैं' (अहंकार) पूरी तरह नहीं मिटता और निष्काम प्रेम प्रगट नहीं होता, तब तक किसी भी बाहरी कष्ट या तपस्या का कोई आध्यात्मिक मूल्य नहीं है। दुर्लभ भक्ति का संबंध शरीर के भूगोल से नहीं, बल्कि चेतना की शुद्धि से है।

जब मन की शुद्धि और निष्काम भाव घर में परिवार के बीच रहकर भी साधा जा सकता है, तो फिर इन कठिन शारीरिक कष्टों (जैसे काँटों पर लेटना, अग्नि के आगे धूनी रमावना या बर्फीली गुफाओं में रहना) का क्या औचित्य है?इस प्रश्न के पीछे अध्यात्म का एक बहुत बड़ा और छिपा हुआ सत्य है:

1. शारीरिक कष्ट और आंतरिक रूपांतरण का भ्रम

वास्तव में, जो लोग या साधक केवल प्रदर्शन के लिए या शरीर को कष्ट देने (Self-torture) को ही भक्ति मान लेते हैं, वे एक बड़े भ्रम में हैं।

- यदि काँटों पर लेटने या धूनी तापने मात्र से अहंकार और वासनाएँ समाप्त हो जातीं, तो हर शारीरिक रूप से सहिष्णु व्यक्ति ज्ञानी हो जाता।
- कई बार व्यक्ति सामान्य जीवन की जिम्मेदारियों, संघर्षों या पारिवारिक उलझनों से घबराकर (पलायनवादी प्रवृत्ति के कारण) ऐसे कठिन मार्गों को चुन लेता है। इसे मनोवैज्ञानिक भाषा में 'सांसारिक जीवन से पलायन' कहा जाता है।

2. वास्तविक **'**तप**'** का अर्थ शरीर को जलाना नहीं है

भारतीय दर्शन और 'दुर्लभ भक्ति' का मूल संदेश यह है कि शरीर को कष्ट देना तपस्या नहीं है।

- असली तपस्या मन के विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह और सबसे बढ़कर 'अहंकार') को गलाने की प्रक्रिया है।
- यदि कोई व्यक्ति हिमालय की गुफा में बैठकर भी मन ही मन दूसरों से ईर्ष्या कर रहा है या खुद को बहुत बड़ा तपस्वी मानकर अहंकार पाल रहा है, तो उसकी वह ठंड, धूप या काँटों की तपस्या पूरी तरह व्यर्थ है। उसे कोई आत्मिक शांति नहीं मिल सकती।

3. फिर गृहस्थ और कठोर तपस्या में अंतर क्या है**?**

- घर में रहकर साधना **(**सहज मार्ग**):** गृहस्थ जीवन में रहते हुए व्यक्ति को तमाम तरह के आघात, मान-अपमान, सुख-दुःख और जिम्मेदारियाँ मिलती हैं। यह संसार ही सबसे बड़ी प्रयोगशाला है। यहीं रहकर यदि व्यक्ति अपने 'कर्ता-भाव' (अहंकार) को छोड़ दे, तो उसका घर ही मंदिर बन जाता है। इसे 'सहज मार्ग' कहा गया है।
- एकांत या कठोर साधना का मार्ग **(**प्रारंभिक चयन**):** जो लोग समाज के भारी कोलाहल, मोह-माया और प्रलोभनों से पूरी तरह कटकर अपने अंतर्मन की गहराई में उतरना चाहते हैं, वे एकांत या प्रकृति की गोद (जैसे जंगल या हिमालय) का सहारा लेते हैं। यह उनके लिए एक शुरुआती अनुशासन होता है ताकि वे दुनिया के विकर्षणों से दूर रहकर अपने भीतर पूरी तरह उतर सकें। किंतु यदि अंत में उनका अहंकार नहीं गला, तो वह कष्ट केवल शारीरिक व्यायाम बनकर रह जाता है।

निष्कर्ष यही है कि चाहे आप घर में गृहस्थी के बीच रहें या किसी एकांत स्थान पर, जब तक मन का 'मैं' (अहंकार) पूरी तरह नहीं मिटता और निष्काम प्रेम प्रगट नहीं होता, तब तक किसी भी बाहरी कष्ट या तपस्या का कोई आध्यात्मिक मूल्य नहीं है। दुर्लभ भक्ति का संबंध शरीर के भूगोल से नहीं, बल्कि चेतना की शुद्धि से है।

अध्याय 22

क्या कोई गुरु या व्यक्ति किसी के चेहरे के भाव, सूक्ष्म शरीर की भाषा (Body Language) या मानसिक तरंगों को पढ़कर मन की बात जान सकता है या नहीं।

इसे अध्यात्म, मनोविज्ञान और तर्क की कसौटी पर इस प्रकार समझा जा सकता है:

1. सूक्ष्म अवलोकन और मनोविज्ञान **(Observation and Psychology)**

जो लोग लंबे समय तक ध्यान, साधना या मानव स्वभाव के बीच रहते हैं, उनकी देखने और समझने की क्षमता बेहद पैनी हो जाती है।

- मनुष्य जब किसी गुरु या विशिष्ट व्यक्ति के सामने जाता है, तो उसके चेहरे की सूक्ष्म माँसपेशियों की हलचल, आँखों की पुतलियों का सिकुड़ना या फैलना, साँस की गति और शारीरिक मुद्रा (Body Language) बहुत कुछ कह देती है।
- इसे आधुनिक मनोविज्ञान में 'कोल्ड रीडिंग' (Cold Reading) या अत्यधिक उन्नत अवलोकन कौशल (Hyper-observation) कहा जाता है। एक अनुभवी और संवेदनशील व्यक्ति सामने वाले के चेहरे के हाव-भाव और उसकी ऊर्जा को देखकर यह अंदाजा लगा लेता है कि उसके मन में किस तरह की उलझन या प्रश्न चल रहा है। इसे कोई जादुई शक्ति या चमत्कार नहीं, बल्कि अनुभव और सूक्ष्म दृष्टि कहा जा सकता है।

2. ऊर्जा का संस्पर्श और संवेदनशीलता **(Empathy and Resonance)**

अध्यात्म की भाषा में, जब कोई व्यक्ति गहरे ध्यान में उतर जाता है, तो उसका चित्त बहुत शांत और संवेदनशील हो जाता है।

- जिस प्रकार शांत पानी में हल्की सी लहर उठते ही पूरा तालाब हिल जाता है, उसी प्रकार एक शांत चित्त वाले व्यक्ति के पास जब कोई अशांत या उलझन में बैठा मन आता है, तो उसकी मानसिक तरंगें (Mental vibrations) उस शांत व्यक्ति को महसूस होने लगती हैं।
- इसे कोई भविष्यवाणियाँ करने की शक्ति या कोई गुप्त मंत्र नहीं कहा जा सकता, बल्कि यह दो चेतनाओं के बीच का एक सूक्ष्म संवाद या सहज संवेदनशीलता है।

3. इसे 'चमत्कार' मानना एक भ्रम है

यदि कोई यह दावा करे कि वह बिना किसी माध्यम के, केवल दूसरों के दिमाग को किसी कंप्यूटर की तरह पढ़ लेता है या हर बात पूरी सटीक जान लेता है, तो यह अक्सर अतिशयोक्ति (Exaggeration) या अंधविश्वास बन जाता है।

- कई बार लोग अपने मन की किसी बात को संयोग (Coincidence) से किसी संत की कही हुई बात से जोड़ लेते हैं और उसे चमत्कार मान बैठते हैं।
- आध्यात्मिक दृष्टि से, इन छोटी-मोटी मानसिक बातों को जान लेना या मन पढ़ना कोई बहुत बड़ी उपलब्धि नहीं है। सच्चे संत और गुरु का उद्देश्य कभी भी लोगों को अपनी इन क्षमताओं से प्रभावित करना नहीं होता। उनका एकमात्र उद्देश्य मनुष्य के भीतर के अहंकार, अज्ञान और दुखों को समाप्त करना होता है।

संक्षेप में कहें तो, किसी के चेहरे के भाव और उसकी सूक्ष्म मानसिक स्थिति को अत्यधिक पैनी नजर या संवेदनशीलता से समझ लेना संभव है, किंतु इसे कोई जादुई चमत्कार या प्रकृति के नियमों के विरुद्ध कोई दैवीय शक्ति मानना उचित नहीं है।

इन गुरुओं, संतों या प्रभावी व्यक्तियों के पीछे इतनी बड़ी संख्या में भीड़ के इकट्ठा होने के पीछे कुछ मुख्य मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और मानवीय कारण होते हैं। इसे नीचे दिए गए बिंदुओं से समझा जा सकता है:

- मानसिक और जीवन के संघर्षों से राहत की तलाश**:** आज के तनावपूर्ण और कोलाहल भरे युग में आम आदमी तरह-तरह की मानसिक चिंताओं, पारिवारिक उलझनों, अकेलेपन और असुरक्षा की भावना से घिरा रहता है। ऐसे में जब उसे किसी ऐसे स्थान पर सांत्वना, थोड़ी मानसिक शांति या अपनेपन का अहसास होता है, तो वह उसकी ओर खिंचा चला जाता है।
- चमत्कारों और आसान समाधानों की लालसा**:** आम इंसान का मन हमेशा किसी ऐसे शॉर्टकट या जादुई समाधान की तलाश में रहता है जो उसके जीवन के दुखों को रातों-रात दूर कर सके। जब किसी व्यक्ति से जुड़ी ऐसी चर्चाएँ फैलती हैं कि वह समस्याओं का तुरंत समाधान कर सकता है या भविष्य बता सकता है, तो लोग जिज्ञासा और उम्मीद में वहाँ जुटने लगते हैं।
- सामूहिक ऊर्जा और भीड़ का मनोविज्ञान **(Crowd Psychology):** इंसानी फितरत है कि वह उस तरफ ज्यादा भागता है जहाँ बाकी लोग जा रहे होते हैं। इसे 'हर्ड मेंटैलिटी' (भीड़ की मानसिकता) कहा जाता है। जब लोग इतनी बड़ी संख्या में किसी जगह इकट्ठा देखते हैं, तो स्वतः ही उनके मन में यह भाव आता है कि "यहाँ कुछ तो विशेष होगा," और इस प्रकार भीड़ अपने आप बढ़ती चली जाती है।
- आकर्षण और वक्ता कौशल **(Charisma):** कई गुरुओं और वक्ताओं का व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली होता है। उनकी बोलने की कला, आत्मविश्वास और सरल शब्दों में जीवन के फलसफों को समझाने का तरीका लोगों को सम्मोहित कर लेता है, जिससे लोग उनके प्रति बहुत जल्दी आकर्षित हो जाते हैं।

- भय, आस्था और धार्मिक भावनाएँ: समाज में सदियों से परंपरा, आस्था और किसी उच्च शक्ति पर विश्वास करने की गहरी जड़ें रही हैं। लोग अपनी श्रद्धा और मोक्ष या पुण्य की प्राप्ति की चाहत में भी ऐसे संस्थानों और आयोजनों से जुड़ते चले जाते हैं।

शून्य का संगीत और दुर्लभ भक्ति का प्रकाश

इस विराट ग्रंथ की यात्रा इस सत्य की खोज है कि मनुष्य केवल हड्डियों और मांस का ढांचा नहीं है, बल्कि वह उस अनंत चैतन्य का ही एक रूप है जो अज्ञान और अहंकार के आवरण में ढका हुआ है। हमने वेदों और उपनिषदों की अद्वैत धारा से लेकर, सूफियों के इश्क-ए-हकीकी, मरु-संतों के एकांत और संतों की अंतःचेतना के हर पड़ाव को टटोला है। इस पूरी यात्रा का निष्कर्ष यही है कि जीवन और अध्यात्म का कोई भी मार्ग तब तक अधूरा है जब तक मनुष्य अपने भीतर के 'मैं' (अहंकार) को पूरी तरह गला नहीं देता।

1. बाहरी पाखंडों और चमत्कारों से मुक्ति

संसार में जितने भी भ्रम, अंधविश्वास, चमत्कार दिखाने के दावे या बाहरी शारीरिक कष्ट सहने की परंपराएँ हैं—वे सब मनुष्य को सत्य से भटकाने का साधन मात्र बन सकती हैं यदि उनका उद्देश्य केवल अहंकार का पोषण या प्रदर्शन हो। प्रकृति के अटल नियमों को कोई नहीं बदल सकता। वास्तविक महानता हवा में कुछ उड़ाने या भविष्य बताने में नहीं है, बल्कि अपने मन के विकारों, ईर्ष्या और स्वार्थ को भस्म कर देना है।

2. सहजता और भीतर की क्रांति

सच्चा अध्यात्म किसी पहाड़ की गुफा में भागने या संसार से डरने का नाम नहीं है। चाहे व्यक्ति गृहस्थी में हो या किसी एकांत में, जब तक उसकी चेतना में निष्काम प्रेम और करुणा का प्राकट्य नहीं होता, तब तक सारे अनुष्ठान व्यर्थ हैं। दुर्लभ भक्ति का मार्ग किसी भय या लालच का मार्ग नहीं है, बल्कि यह होश, साहस और पूर्ण स्वतंत्रता का मार्ग है।

3. मानवता के लिए शाश्वत संदेश

आने वाले समय में कोलाहल, तकनीक और भागदौड़ भले ही कितनी भी बढ़ जाए, किंतु मनुष्य के भीतर की प्यास कभी नहीं मिटेगी। जब भी मन अशांत हो, तो बाहर किसी चमत्कार या शॉर्टकट की तलाश करने के बजाय अपने ही भीतर उस मौन और शून्य की ओर लौटिए।

जहाँ अहंकार मिटता है, वहाँ प्रेम जन्म लेता है।

जहाँ प्रेम प्रगट होता है, वहाँ द्वैत समाप्त हो जाता है।

और जहाँ द्वैत समाप्त होता है, वहाँ असीम शांति और परम प्रकाश स्वतः प्रकट होता है।

यही 'दुर्लभ भक्ति' का अंतिम संदेश है—अपने भीतर के पाखंड को छोड़िए, छोटे 'मैं' को विसर्जित कीजिए और इस जीवन को प्रेम, करुणा और सहज आनंद का एक उत्सव बना दीजिए।

॥ इति 'दुर्लभ भक्ति'महाग्रंथ संपूर्णम् ॥